Con. 3.VII. 18. 48
350

अंक 7
संख्या 18

बृहस्पतिवार,
2 दिसम्बर,
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा-(जारी)..... 1159-1238
[अनुच्छेद 13 और 14 पर विचार (जारी)]

भारतीय विधान-परिषद्

बृहस्पतिवार, 2 दिसम्बर, सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः साढ़े नौ बजे उपाध्यक्ष (डॉक्टर एच.सी. मुकर्जी) की अध्यक्षता में हुई।

अनुच्छेद 13—(जारी)

***उपाध्यक्षः** (डॉक्टर एच.सी. मुकर्जी): हम अनुच्छेद 13 पर वाद-विवाद को पुनः आरम्भ करेंगे।

मैं इस सम्बन्ध में सभा के विचार जानना चाहता हूं कि हम अनुवर्त्ती संशोधनों पर किस प्रकार विचार करें—कल हमने इन संशोधनों पर विचार-विमर्श स्थगित कर दिया थाः

संशोधन संख्या 442, संख्या 499, संख्या 443 का दूसरा भाग, संख्या 468 और संख्या 501 ।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): क्या मैं यह सुझाव पेश कर सकता हूं कि इन पर विचार इस समय इसलिये स्थगित रखा जाये क्योंकि इनका सम्बन्ध मतदान में स्वतंत्र पसन्द रखने से तथा ऐसी बातों से है। जिनके बारे में अनुच्छेद 13 में पहले ही से कोई प्रावधान नहीं है। इनको बाद में मौलिक अधिकारों से सम्बद्ध एक स्वतंत्र खण्ड के रूप में पेश किया जाये। ऐसा करने से अनुच्छेद 13 के पारित करने में कोई बाधा न होगी। उससे सम्बन्धित संशोधन पहले ही प्रस्तावित किये जा चुके हैं और इस पर विचार-विमर्श आरम्भ हो सकता है।

***उपाध्यक्षः** क्या सभा का यही विचार है?

***माननीय सदस्यगणः** जी हां।

***उपाध्यक्षः** तो फिर हम अनुच्छेद पर सामान्य वाद-विवाद करेंगे। इस अनुच्छेद पर बहुत से माननीय सदस्य बोलना चाहते हैं। अतः सभा की अनुमति

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[उपाध्यक्ष]

से मैं सामान्यतया प्रत्येक भाषण के लिये 10 मिनट नियत करना चाहता हूं। जहां मैं आवश्यक समझूंगा इस समय को बढ़ा दूंगा। क्या इस दस मिनट के समय को नियत करने के लिये सभा मुझे अनुमति देती है?

***माननीय सदस्यगणः** जी हां।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान्, दो संशोधनों को स्थगित कर दिया गया है। जब तक वे पेश नहीं किये जाते तब तक सम्पूर्ण अनुच्छेद पर किस प्रकार सामान्य वाद-विवाद हो सकता है?

***उपाध्यक्षः** वे कौन-कौन से संशोधन हैं?

***श्री एच.वी. कामतः** संख्या 499 और संख्या 422 ।

***उपाध्यक्षः** वे नये खण्ड के अंग होंगे।

सरदार भूपेन्द्रसिंह मान (पूर्वी पंजाब : सिख): साहिब सदर, मैं आज़ादी तहरीरी और तकरीरी को शहरी आज़ादी की जान समझता हूं और इसको बुनियादी अधिकार मानता हूं। जनता के लिये आमतौर पर लेकिन माइनोरिटीज के ख्याल से खासतौर पर इसे राइट ऑफ एसोसियेशन और राइट ऑफ स्पीच को निहायत ज़रूरी समझता हूं। आखिर इन्हीं के ज़रिये हम हुकूमत के पास अपनी आवाज़ पहुंचा सकते हैं और अपने साथ होने वाली बेइन्साफी की रोकथाम कर सकते हैं। इन्हीं अधिकारों को मनवाने के लिये मुल्क ने कितनी ही लड़ाइयां लड़ीं और एक सख्त जद्दोज़हद के बाद इस अधिकार को मनवाया। लेकिन जब इस अधिकार को लागू करने का वक्त आया है तो हुकूमत एक किस्म की झिझक महसूस कर रही है और जो बात पहले नाखूब समझी जाती थी, उसे खूब बनाया जा रहा है। एक हाथ से जो चीज़ दी जाती है, दूसरे हाथ से उसे छीन लिया जाता है। हर क्लाज़ के बाद इतनी पाबन्दियां लगाई जा रही हैं। मौजूदा कानून को बदल गये वाकयात के बावजूद लागू करना आज़ादी तहरीर व तकरीर के साथ मज़ाक करना है। मौजूदा कानून के खिलाफ तो हम शुरू से ही लड़े हैं। लेकिन अब आप इसी को ठूंस रहे हैं। वही पुरानी बातें आप चलाना चाहते हैं कि न वकील हो, न दलील हो और न अपील हो। जलसा अगर किया जाये तो उसको तोड़ने के लिये लाठियों का इस्तेमाल किया जाये और लोगों को बगैर मुकद्दमा चलाये हुये जेल में बन्द कर दिया जाये और जमाअतों को खिलाफ कानून करार देना, हमें तो यह तस्वीर

अच्छी दिखाई देती नहीं। आप इन सब बातों को कायम रखना चाहते हैं तो, मैं समझता हूं कि आप इस तरह से यह पाबन्दियां लगा कर बहुत ही बेइन्साफी कर रहे हैं। चन्द अधिकार ऐसे थे जिनको कि हम बहुत ही जरूरी समझते थे। आपने उनको स्टेट पोलिसी के क्लाज़ में रख दिया है जिनको कि हम अदालत में जाकर मंजूर नहीं करा सकते और उन अधिकारों को आप मोड़-तोड़ कर डाइलूट कर रहे हैं। यहां तक कि इनमें कोई ठोस चीज़ बाकी नहीं रह जाती।

साहिब सदर, मैं चाहता हूं कि इन अधिकारों पर यह कड़ी पाबन्दियां न लगाई जावें। और आप अपोजीशन को जो अमन और बगावत आमेज अपोजीशन न हो, उसे पूरा-पूरा मौका दिया जाना चाहिये क्योंकि आखिर जितनी भी जम्हूरी गवर्नमेण्ट और निज़ाम हैं, उनमें अपोजीशन जरूरी होता है। मैं समझता हूं कि लीगल और बा अमन अपोजीशन को दबा देना फासिज़्म की तरफ जाना है।

सेठ गोविन्ददास (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): सभापति जी, मौलिक अधिकारों की धारा 13 मौलिक अधिकारों की समस्त धाराओं में सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इन धाराओं के द्वारा हमको जिन बातों के अधिकार दिये गये हैं वे सभी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। यहां पर कल श्री दामोदरस्वरूप सेठजी ने और श्रीयुक्त के.टी. शाहजी ने अपने सुधार पेश किये। उन सुधारों में ज्यादातर यही कहा गया कि जो अधिकार हमें एक हाथ से दिये जाते हैं वे दूसरे हाथ से वापस लिये जा रहे हैं। कुछ दूर तक यह बात सही हो सकती है। परन्तु यदि हम इस समय की राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों परिस्थितियों को देखें और इस बात पर गौर करें कि हमें अभी हाल ही स्वतंत्रता प्राप्त हुई है, हमारी सरकार अभी बाल्यावस्था में है, तो हमको मानना पड़ेगा कि सरकार के हाथ में उन अधिकारों का रहना आवश्यक है, कि जो अधिकार इन अधिकारों के देने के बाद भी सरकार ने अपने हाथ में रखे हैं। हम देखें कि हमारे पड़ोसी देश बर्मा में क्या हो रहा है? हम देखें कि इस समय एशिया के दूसरे बहुत बड़े देश चीन में लड़ाई चल रही हैं वहां पर क्या हो रहा है? इन सब बातों को देखने के पश्चात् हमको इस बात पर विचार करना चाहिये कि इस समय की हमारी जो राष्ट्रीय परिस्थिति है और हमारे पड़ोसी देशों में जो कुछ हो रहा है उसको देखते हुए इन अधिकारों का सरकार के हाथ में रहना कितना आवश्यक है।

मैं तो स्वयं उस मत का होता कि ये सब अधिकार हमारी जनता को दे दिये जायें और इन अधिकारों के सम्बन्ध में जो पाबन्दियां लगाई गई हैं, वे न रहें।

[सेठ गोविन्ददास]

परन्तु आज वैसी परिस्थिति नहीं है। मुझे इन अधिकारों में से कुछ अधिकारों के सम्बन्ध में विशेष रूप से कहना है। इसमें पहली उपधारा freedom of speech and expression की। जहां तक इस स्वतंत्रता का सम्बन्ध है वहां तक आगे जो पाबन्दी है उसमें जो 'sedition' शब्द आया है उसके विषय में यहां एक सुधार पेश हुआ है। बड़े हर्ष की बात है कि हम इस सुधार के अनुसार 'sedition' शब्द को निकाल देना चाहते हैं। हमारे यहां जो फौजदारी कानून है उस कानून में 124-अ दफा जब लायी गई थी उसका मैं यहां के माननीय सदस्यों को स्मरण दिलाना चाहता हूं। उन्हें याद होगा कि वह दफा लोकमान्य बालगंगाधर तिलक को सज़ा देने के लिये खासतौर पर बनाई गई थी। उसके बाद उस दफा के अन्तर्गत हम लोगों में से न जाने कितनों को किस-किस प्रकार से सजायें दी गईं। मुझे यहां पर कुछ व्यक्तिगत बातें याद आ जाती हैं। मैं एक ऐसे कुटुम्ब से आता हूं कि जो कुटुम्ब अपनी राजभक्ति के लिये हमारे मध्यप्रान्त में बहुत प्रसिद्ध था। एक परम्परा थी हमारे यहां खिताब पाने वालों की। मेरे दादा को राजा का खिताब था, मेरे चचा साहब दीवान बहादुर थे और मेरे पिता जी भी दीवान बहादुर। मुझे आज बहुत खुशी है कि अब इस देश में कोई खिताब मिलने वाला नहीं है। परन्तु ऐसे कुटुम्ब से आने पर भी 124-अ में मेरे ऊपर मुकद्दमा चलाया गया। वह मुकद्दमा एक बड़ी दिलचस्प बात पर चलाया गया था। मेरे परदादा को सोने का एक कमरपट्टा मिला था, हीरों से जड़ा हुआ। उनको सन् 1857 में सरकार को मदद देने के लिये अंग्रेज सरकार ने इसे दिया था और उस पर लिखा हुआ था "In recognition of his services during the Mutiny in 1857"। मैंने सन् 1930 के सत्याग्रह आन्दोलन में अपने भाषण में कहा कि मेरे परदादा ने विदेशी सरकार को मदद देने के लिये यह कमरपट्टा पाया। ऐसी सरकार को मदद देकर उन्होंने पाप किया था और अब मैं उस पट्टे पर यह खुदवाना चाहता हूं कि जिस सरकार को स्थापित करने के लिये उन्होंने 1857 में सहायता देकर पाप किया, उस पाप का प्रायश्चित उनके परपोते ने उस सरकार को उखाड़ने का प्रयत्न किया है। इस पर मेरे ऊपर 124-अ में मुकद्दमा चलाया गया और दो वर्ष के लिये मुझे कड़ी सजा दी गई। कहने का मतलब यह है कि इस सभा के अनेक सदस्य ऐसे हैं जिनको इस 124-अ धारा के अनुसार sedition में न जानें कितनी बड़ी-बड़ी सजायें दी गई थीं। बड़ी खुशी की बात है कि हमको अब freedom of speech and expression इस उपधारा में दी जा रही है और इसमें से 'sedition' शब्द भी निकल जाने वाला है।

दूसरे जिस बात पर मैं आपका ध्यान आकर्षित कराता हूं वह इस धारा की 'बी' उपधारा हैं। उसमें यह लिखा है: (to assemble peacefully without arms; 'without arms') पर मैं आपका ध्यान विशेष रूप से आकर्षित कराना चाहता हूं। मैं यह मानता हूं कि हमको बिना हथियारों के ही इस तरह के जमावों का अधिकार होना चाहिये। हमने अहिंसा की दीक्षा ली थी और अहिंसा के द्वारा हमने स्वराज्य प्राप्त किया। यह सत्य बात है कि इस समय संसार की जैसी परिस्थिति है, उसके कारण हमको सेनायें रखनी पड़ती हैं। परन्तु मैं तो इस बात को मानता हूं कि यदि मानवता का कल्याण होने वाला है तो बिना अहिंसा के वह नहीं हो सकता। इस तरह की जो सभायें हों, उनमें हमें जमा होने का अधिकार तो होना चाहिये पर बिना शस्त्रों के।

इसके बाद दो उपधारायें हैं, जिन पर मैं आपका ध्यान आकर्षित करता हूं। वे हैं 'एफ' और 'जी'। इन उपधाराओं की शब्दावली इस प्रकार है:

"to acquire, hold and dispose of property; " and

"to practise any profession or to carry on any occupation trade or business."

मैं तो इस बात को मानता हूं कि जिस प्रकार अहिंसा के बिना इस संसार में मानवता का कल्याण नहीं हो सकता, उसी प्रकार जब तक व्यक्तिगत सम्पत्ति की समाप्ति नहीं हो जायगी, तब तक सच्ची शांति स्थापित नहीं हो सकती। मैं समाजवादी या साम्यवादी नहीं हूं। परन्तु इसके साथ मैं यह भी कहना चाहता हूं कि इस सम्पत्ति की रक्षा के लिये धनवानों को, बड़े-बड़े व्यापारियों को, बड़े-बड़े जमीदारों, को, ताल्लुकेदारों को जो कार्यवाहियां करनी पड़ती हैं, उनसे किसी को सच्चा सुख नहीं मिल सकता। यह बात नहीं है कि जिनके पास धन नहीं है, केवल वही दु:खी है, निर्धन तो दु:खी हैं ही, परन्तु इस समय की सामाजिक रचना में जिनके पास धन है, वह निर्धनों से अधिक दु:खी हैं और आज यह सोने की तौक धनवानों का गला घोट रही है। उनके पास यह सम्पत्ति बहुत दिनों से चली आ रही है। इसीलिये वे इसे रखने के इच्छुक हैं, सुख के लिये नहीं। बलपूर्वक यदि सम्पत्ति का हरण किया गया तो सच्चे समाजवाद या साम्यवाद की स्थापना नहीं हो सकती। रूस के दृष्टान्त से यह सिद्ध हो जाता है। वहां बलपूर्वक व्यक्तिगत सम्पत्ति का हरण हुआ। जिसका फल यह निकला कि वहां व्यक्तिगत सम्पत्ति समाप्त न हो सकी, वरन् अब भी उल्टी बढ़ रही है। परन्तु यदि हम इस

[सेठ गोविन्ददास]

देश में तथा संसार में मूल्यों में परिवर्तन करने का प्रयत्न करें और इस तरह के वायुमण्डल की उत्पत्ति करें जिससे स्वयं लोग इस सम्पत्ति से अपना पिंड छुड़ाना चाहें, तो ठीक अवस्था आ सकती है और सच्चे समाजवाद की स्थापना सम्भव हो सकती है। दुनिया में मूल्यों में समय-समय पर परिवर्तन हुआ है। पहले आदमी-आदमी को खा जाता था, यह इतिहास-सिद्ध बात है। उस समय जो आदमी सबसे अधिक आदमियों को खाने की क्षमता रखता होगा, उसकी समाज पूजा करता होगा क्योंकि वही वीर माना जाता होगा। एक दूसरा समय आया जबकि गुलामों का रोजगार होता था। जो सबसे अधिक गुलाम अपने पास रखते थे, वे सबसे बड़े आदमी माने जाते थे। परन्तु उस अवस्था में भी परिवर्तन हुआ। आज जितने धनवान हैं, उनको हमारे समाजवादी लुटेरे, डाकू कहते हैं। वे यह कहते जरूर हैं, परन्तु क्षमा करें यदि मैं कहूं कि उनमें से अधिकांश समाजवादी ऐसे हैं, जिनको यदि यह सम्पत्ति मिल जाये तो वे समाजवाद को स्वयं छोड़ दे। आवश्यकता है विचारों में परिवर्तन की। और यदि समाज में ऐसे विचारों का प्रसार होकर मूल्यों में परिवर्तन हुआ, तो सचमुच ये धनवान् चोर और उठाइगीरे माने जाने लगें। तो कोई भी इस सम्पत्ति को नहीं रखना चाहेगा। अहिंसा के द्वारा ही इस प्रकार का मत-परिवर्तन और हृदय-परिवर्तन हो सकता है। मुझे आशा है कि आगे चल कर विधान में से सम्पत्ति सम्बन्धी उपधारायें निकल जायेंगी।

मैं इस मौलिक अधिकारों की पूरी 13 धारा का हृदय से समर्थन करता हूं।

***श्री जयपाल सिंह** (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, जहां तक मेरा सम्बन्ध है यह विशेष अनुच्छेद मुझे किसी प्रकार से भी भयभीत नहीं करता है, यद्यपि अनेकों मौलिक अधिकारों को बहुत से अपवादों द्वारा कण्टकाकीर्ण बना दिया गया है। मेरे लिये तो यह स्पष्ट है कि इस विधान में हम चाहे जो कुछ रखें, उसका मूल्य—हमारे लिये उसका उपयोग—उस विधि पर निर्भर होगा जिस विधि से हम इन बातों को क्रियान्वित करेंगे। परन्तु एक या दो बातें ऐसी हैं कि मैं चाहूंगा कि डॉक्टर अम्बेडकर उन पर प्रकाश डालें। पहली बात जिसको मैं उनके द्वारा स्पष्ट कराना चाहता हूं वह संशोधन सख्या 491 के सम्बन्ध में है जिसको उन्होंने पेश किया है और जिसमें वे "आदिवासी" शब्द के स्थान में "अनुसूचित" शब्द रखना चाहते हैं। श्रीमान्, जब कभी भी ऐसी अवस्था में आदिवासियों पर प्रभाव डालने वाली किसी भी बात पर मुझे वाद-विवाद करना पड़ा है उस समय मेरा अहित ही हुआ है। इसका स्पष्ट कारण यह है कि वनजाति सम्बन्धी

उप-समितियों की दो रिपोर्टों पर इस सभा में पूर्णरूप से वाद-विवाद नहीं हो पाया है, जिसका फल यह हुआ कि सभा अपना सामूहिक दृष्टिबिन्दु न बना सकी अथवा किसी सामूहिक निर्णय तक न पहुंच सकी जैसा कि अन्य समस्त अनुच्छेदों के सम्बन्ध में हुआ है; अर्थात् उन अनुच्छेदों के सम्बन्ध में जो हमारे देश के गैर-वनजाति लोगों पर प्रभाव डालते हैं।

इस शब्द "वनजाति सम्बन्धी" के प्रश्न को ही लीजिये। जहां तक मुझे विदित है किसी भी उप-समिति ने अनुसूची बनाने के कार्य को नहीं किया। मुझे यह भली प्रकार विदित है कि जिस उप-समिति का मैं सदस्य था उसने इस प्रकार का कोई भी कार्य नहीं किया और सच तो यह है कि स्वयं मसौदा-समिति ने ही विधान के मसौदे में जो कुछ भी भारतीय सरकार-एक्ट में मिला उसे रख दिया। अब सूची की ओर देखिये।

दूसरी बात जिसके बारे में मैं स्पष्टीकरण कराना चाहता हूं वह यह है कि दोनों उप-समितियों की सिफारिशों में जिन परामर्शदात्री परिषदों और प्रादेशिक परिषदों का जिक्र है क्या वे तथाकथित अनुसूचित क्षेत्रों के बाहर भी कार्य करेंगी। यदि उनसे बाहर कार्य करने में वे समर्थ न होंगी तो मैं डॉक्टर अम्बेडकर से यह जानना चाहूंगा कि उन आदिवासियों के सम्बन्ध में क्या होगा जो उन अनुसूचित क्षेत्रों से बाहर करोड़ों की संख्या में हैं। जहां तक मैं विधान की भाषा को समझ सका हूं, प्रादेशिक परिषदें और परामर्शदात्री परिषदें गवर्नर को परामर्श देने के लिये हैं या यों कहिये, यदि एक बार यह स्वीकार कर लिया जाता है कि प्रादेशिक समितियां और परामर्शदात्री समितियां अनुसूचित क्षेत्रों से बाहर भी कार्य कर सकती हैं तो मेरा प्रश्न हल हो जाता है।

पश्चिमी बंगाल को लीजिये। जो कुछ प्रस्तावित किया गया है उसके अनुसार पश्चिमी बंगाल में अनुसूचित क्षेत्र नहीं होंगे। पश्चिमी बंगाल में 16 लाख आदिवासी हैं। मैं यह जानना चाहता हूं कि उनके सम्बन्ध में क्या होगा। न तो प्रादेशिक समितियां हैं और न वहां परामर्शदात्री समितियां ही होंगी। उनकी भलाई के लिये, इसलिये कि क्या किया जाये और क्या नहीं किया जाये, उनके पक्ष तथा विपक्ष में कौन-सा अधिनियम लागू होगा, इन सब बातों के लिये गवर्नर को कौन मंत्रणा देगा? मैं समझता हूं कि यह एक प्रश्न है जिसे स्पष्ट करना ही है।

श्रीमान्, वनजातियों की सूची, जो इस विधान के मसौदे में है, वह बहुत ही असन्तोषजनक है। मैं उसमें से एक या दो उदाहरण दूंगा। श्रीमान् आप स्वयं

[श्री जयपाल सिंह]

पश्चिमी बंगाल से आये हैं। बंगाल को तीन प्रान्तों में बांट दिया गया है, बंगाल संयुक्त—वर्तमान पश्चिमी बंगाल, बिहार और तत्पश्चात् उड़ीसा। इनकी प्रादेशिक सीमाओं के बारे में अंग्रेजों के अपने निजी कारण थे, किन्तु आज कल आप यह भली प्रकार जानते हैं कि वर्तमान सीमाओं के बारे में तीनों प्रान्तों में से कोई भी सन्तुष्ट दिखाई नहीं देता। पश्चिमी बंगाल बिहार का कुछ भाग चाहता है; बिहार भी पश्चिमी बंगाल का कुछ भाग चाहता है। उड़ीसा भी बिहार से कुछ प्रदेश लेने की रट लगाये हुये है। यह वर्तमान राजनैतिक स्थिति है, परन्तु आदिवासियों पर इसका किस प्रकार प्रभाव पड़ता है? एक प्रकार से वनजाति सम्बन्धी उप-समिति तो बेकार-सी हो गई है क्योंकि लाखों की संख्या में रियासतों की जनता प्रान्तों में मिला दी गई है। उड़ीसा के ही प्रश्न को लीजिये। जब वनजाति सम्बन्धी उप-समिति उड़ीसा गई तो उसे केवल उन क्षेत्रों के सम्बन्ध ही विचार करना पड़ा जो कि अपवर्जित अथवा अंशत: अपवर्जित थे। वर्तमान स्थिति यह है कि लगभग 24 रियासतों को उड़ीसा में मिला दिया गया है और अनेकों अन्य रियासतों को मध्यप्रान्त में मिला दिया गया है। इनमें से बहुत-सी रियासतों में आदिवासी बड़ी-बड़ी संख्याओं में हैं। उनके सम्बन्ध में क्या होगा? जिन-जिन अनुसूचित क्षेत्रों की उप-समिति ने सिफारिश की है वह वास्तव में तुच्छ है। उसमें समस्त आदिवासियों की जनसंख्या नहीं आती है, विशेषकर मध्यप्रान्त और उड़ीसा के दोनों प्रान्तों की।

अत: मैं यह चाहता हूं कि डॉक्टर अम्बेडकर मुझे यह स्पष्ट बतायें कि जो कुछ प्रावधान, जो कुछ रियायतें वे इस विधान में रखना चाहते हैं वे उन क्षेत्रों में भी लागू होंगी या नहीं जिनका अनुसूचित क्षेत्रों के अन्तर्गत विशेष कर उल्लेख नहीं किया गया है।

तत्पश्चात् मैं अनुच्छेद 13(1) (ख) अर्थात् "शान्तिपूर्वक निरायुध सम्मेलन" के बारे में कुछ कहना चाहता हूं। मुझे यह बताना है कि आयुध अधिनियम को आदिवासियों के विरुद्ध बड़े अपकारक रूप में लागू किया गया है। यद्यपि वे अपने जीवन के सामान्य कार्यक्रम के रूप में प्रतिदिन ऐसा करते हैं और वे पीढ़ी-दर-पीढ़ियों से ऐसा करते चले आ रहे हैं और आज भी वे वही कर रहे हैं जो वे पूर्व काल से ही ऐसा कर रहे थे। फिर भी इसी बात से कि आदिवासी धनुष बाण, लाठी अथवा कुल्हाड़ी धारण करते हैं इसीलिये कुछ राजनैतिक दलों

ने तो यह धारणा तक बना ली कि वे लोग (आदिवासी) किसी उत्पात के लिये तैयारी कर रहे हैं। मैं आपको ओरावों का उदाहरण दूं। हमारी इस परिषद् में केवल एक ओरांव सदस्य हैं। आदिवासियों का ओरांव-समूह भारत के आदिवासियों में चौथा बड़ा समूह है। आज कल उनके यहां वे उत्सव हो रहे हैं जिनको हम यात्रा अथवा मेला कहते हैं। उनके सांस्कृतिक कार्यों के ये वार्षिकोत्सव हैं। उनके यहां एक उत्सव होता है जिसमें ओरांव गांव का मुखिया झण्डा लेकर चलता है और शेष जन अपने साथ लाठी लेकर चलते हैं और वे अनेकों अखाड़े या गांवों की ओर जाते हैं। उन लोगों का यह उत्सव है; पीढ़ी-दर-पीढ़ियों से वे इसे सीधे-साधे अहितकर रूप में करते चले आये हैं और अब गत वर्ष तथा गत वर्ष से एक वर्ष पूर्व हमसे कहा गया कि हम हथियार लेकर उत्सव में न चलें। यह बताने में मुझे कोई संकोच नहीं है कि बिहार के यहां ऐसे अनेकों सदस्य हैं जो अपने घर तक कभी भी वापस नहीं पहुंच सकते, यदि उनके मार्ग में मनुष्यों अथवा आयुधों के सहारे रक्षा न की जाये। अपने देश में हम जंगल में रहते हैं और प्रत्येक व्यक्ति—मैं आपको यह भी बता दूं कि स्त्रियां तक भी—अपने साथ वह वस्तु रखती हैं जिसे कि आयुध कहा जा सकता है, परन्तु आयुध की सच्ची परिभाषा में वे आयुध नहीं हैं। जब कभी हमें सभा करनी हो और यदि लोग अपनी सदैव की वस्तुओं को साथ लेकर आवें तो मैं जानता हूं कि क्या उससे यह अर्थ लगाया जायेगा कि हम अशांतिपूर्वक सम्मेलन कर रहे हैं और गैर-कानूनी प्रयोजन के लिये आयुध-धारण किये हुये हैं। इन प्रश्नों का, श्रीमान्, मैं स्पष्टीकरण चाहता हूं।

मैं एक और उदाहरण दूंगा। प्रत्येक सात वर्ष के पश्चात् छोटा नागपुर में यह प्रथा है कि वे एक उत्सव मनाते हैं जिसे वे 'ईरा सेन्द्रा, जानी शिकर' कहते हैं। प्रत्येक सात वर्ष के पश्चात् स्त्रियां पुरुषों के समान वेष धारण करती हैं और जंगल में शिकार करती हैं—याद रखिये पुरुषों के समान वेष धारण करके। वह एक ऐसा अवसर है जब कि स्वभावतः स्त्रियां पुरुषोचित पराक्रम का प्रदर्शन करना चाहती हैं। वे मनुष्यों के समान आयुध धारण करती हैं—तीर, कमान, लाठी, बेला इत्यादि। श्रीमान्, विधान में इस विशेष अनुच्छेद के अनुसार सरकार यह अर्थ लगा सकती है कि प्रत्येक सात वर्ष के पश्चात् स्त्रियां किसी संकटास्पद प्रयोजन के लिये एकत्रित होती हैं। मैं सभा से आग्रह करता हूं कि वह ऐसा कोई काम न करे जिससे सीधी-सादी जनता में उथल-पुथल पैदा हो। हमारे देश में बहुत ही शान्त स्वभाव के नागरिक हैं और हमें किसी ऐसे काम के करने में, जिसके प्रति उन्हें भ्रम हो जाये और जो उत्पात का कारण हो जाये, बहुत ही सचेत रहना चाहिए।

[श्री जयपाल सिंह]

श्रीमान्, जैसा कि मैं कह चुका हूं इस विशेष अनुच्छेद को स्वीकार करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु मैंने सोचा कि इन दो विशेष प्रश्नों पर मैं डॉ.अम्बेडकर के स्पष्ट विचार जानने का प्रयास करूं।

उपाध्यक्षः श्री हनुमन्थैया!

***काजी सैयद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): मैं आपकी दृष्टि में नहीं आया, श्रीमान्,

***उपाध्यक्षः** दुर्भाग्यवश मेरे केवल दो ही आंखें हैं। वे आपकी ओर अबकी बार जायंगी।

***एक माननीय सदस्यः** श्रीमान्, आप तीसरी आंख क्यों नहीं रखते हैं?

***उपाध्यक्षः** आप सामने की बेंच पर क्यों नहीं आ जाते हैं? मैं कहता हूं कि यह तो सभा का ही दोष है जिसने सर्वसम्मति से एक बूढ़े आदमी को अपना उपाध्यक्ष चुना। उसकी नेत्र-ज्योति उतनी अच्छी नहीं है जितनी कि उनसे कम आयु वाले व्यक्तियों की है। श्री हनुमन्थैया!

***श्री के. हनुमन्थैया** (मैसूर): उपाध्यक्ष महोदय, यह अनुच्छेद हम सबके कुछ अत्याकांक्षित अधिकारों का समामेलन करता है। विगत साठ से कुछ अधिक वर्षों से, जिस काल में स्वतंत्रता-आन्दोलन स्वरूप ग्रहण कर रहा था, इस अनुच्छेद में समामेलित मौलिक अधिकारों को प्राप्त करने के लिये हमने अनेकों भाषण दिये और अनेकों बलिदान किये। परन्तु यहां के अनेकों सदस्यों का दृष्टि-बिन्दु तथा कुछ बाहर के लोगों की सम्मति यह है कि इन मौलिक अधिकारों को इतना संकुचित कर दिया गया है कि उनके मूल महत्व का ही नाश हो गया है। श्रीमान्, प्रत्येक कानून, चाहे वह अधिकार के रूप में हो अथवा कर्त्तव्य के, तत्कालीन समाज की परिस्थिति के अनुसार अपना रूप ग्रहण करता है। हमने उन कष्टों और दुःखों को सहा जो हमारे ऊपर ब्रिटिश साम्राज्यवादी के दमनकारी कानूनों द्वारा लादे गये थे। इसके कारण स्वभावतः हम शुद्ध मौलिक अधिकारों के समर्थक हो गये और यही हमारी आशा थी। परन्तु अन्त में जब हम उन अगणित कठिनाइयों से मुक्त हुये तो हमें अपनी समाज के अन्तर्गत ही ऐसे व्यक्तियों से मुठभेड़ हुई जो मनुष्य, समाज को नुकसान पहुंचाने और कानूनों को तोड़ने के लिये इन अधिकारों से लाभ उठाना चाहते थे। अतः इस कारण

मसौदा-समिति को तथा अनेकों प्रान्तों और केन्द्र की सरकारों की भी इन अधिकारों को अपने शुद्ध मूल रूप में संरक्षण करने के लिये बहुत ही विवश होना पड़ा। जो व्यक्ति हिंसा में विश्वास करता है और जो हिंसात्मक विधि द्वारा राज्य और समाज में उथल-पुथल पैदा करना चाहता है उसे इन अधिकारों के सहारे अपने साधनों की पूर्ति नहीं करने देना चाहिये। इस आशय की पूर्ति के लिये ही मसौदा-समिति ने इन मौलिक अधिकारों के प्रवर्त्तन को परिसीमित करना उचित समझा है।

दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि परिसीमित करने का अधिकार विधान-मण्डल को होना चाहिये या न्यायालय को। यह बड़ा ही विवादास्पद प्रश्न है। बहुत से लोग सोचते हैं—और वह भी बड़े शुद्ध अन्तःकरण से कि विधान-मण्डल या अधिशासी-वर्ग का इस बात से कोई सम्बन्ध नहीं है कि वे इन मौलिक अधिकारों के प्रवर्त्तन में इनकी परिसीमायें निर्धारण करें और यह कार्य न्यायालयों को सौंप दिया जाना चाहिये क्योंकि वे राजनैतिक प्रभावों से मुक्त हैं, स्वाधीन हैं और बिना किसी पक्षपात के विचार कर सकते हैं। इस विचार को बहुत से लोग तथा विचारक माने हुये हैं। श्रीमान्, यद्यपि में उस सदिच्छा का आदर करता हूं, जिससे कि यह तर्क हमारे सामने रखा जाता है किन्तु फिर भी मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि इस आदर्श को व्यवहार में किस प्रकार लाया जा सकता है। अन्ततोगत्वा न्यायालय तो किसी भी विधि का निर्वचन उसके उस समय विद्यमान रूप के अनुसार ही कर सकते हैं किन्तु कोई भी विधि अपने असली रूप में सर्वदा के लिये उपयोगी अथवा उचित सिद्ध नहीं हो सकती। समाज परिवर्तित होते हैं, सरकारें बदल जाती हैं और वर्ष-वर्ष के बाद नहीं तो दस-दस वर्ष के बाद लोगों के मानसिक गठन तथा स्वभाव में परिवर्तन हो जाता है। अतः यह आवश्यक है कि विधि ऐसी हो जो स्वयं ही परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुकूल हो जाये। यह तो स्वाभाविक बात ही है कि न्यायालय विधान-निर्माण का कार्य नहीं कर सकते; उनका काम तो विधियों का निर्वचन ही है। अतः इस प्रयोजन से कि भविष्य में अस्तित्व में आने वाली परिस्थितियों से विधि का तालमेल रहे, विधान-मण्डलों को यह शक्ति दे दी जाती है कि वे मौलिक अधिकारों के प्रयोग को सम्यक प्रकार से नियंत्रित अथवा परिसीमित करें। और यह तो साफ ही है कि विधान-मण्डल ऐसे लोगों से मिल कर तो बनता नहीं जो जनता की इच्छा के बिना ही उसमें आ गये हैं। इसके विपरीत उसमें तो जनता के ऐसे सच्चे प्रतिनिधि ही होते है जैसों के लिये इस संविधान में प्रावधान किया गया है। अतः यदि किसी समय विधान-मण्डल यह उचित समझता है कि उन

[श्री के. हनुमन्थैया]

अधिकारों को विशेष प्रकार और खास रीति से विनियमित किया जाये तो उसमें कोई बुराई की बात नहीं हो सकती और न वह बात निरंकुशवादिता का द्योतक हो सकती है और न उससे मूलाधिकारों में कोई कमी आ सकती है। मुझे वास्तव में खुशी हुई है कि मौलिक अधिकारों के प्रयोग करने को नियमित करने का अधिकार न्यायालयों की अपेक्षा विधान-मण्डलों को दिया गया है।

श्रीमान्, यहां अनुच्छेद 13 में लगभग 13 मौलिक अधिकारों का समामेलन किया गया है। मैं सच्चे हृदय से यह कह सकता हूं कि मसौदा-समिति ने प्रथम चार स्वतंत्रताओं को रखने में बहुत अच्छा कार्य किया है—भाषण और अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य, शान्तिपूर्वक सम्मेलन का और पार्षद् बनाने का स्वातन्त्र्य और भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र में अबाद् पर्यटन का स्वातंत्र्य। आगामी तीन खण्डों में जो अधिकार दिये गये हैं अर्थात् देश के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का अधिकार, सम्पत्ति के अवापन, संधारण और यापन का अधिकार और कोई व्यवसाय-वृत्ति, वाणिज्य अथवा व्यापार करने का अधिकार, वे मेरी सम्मति में मौलिक अधिकार नहीं कहे जा सकते; वे वास्तव में मौलिक अधिकार नहीं हैं। वे तो संसद् अथवा राज्यों के विधान-मण्डलों द्वारा बनाये जाने वाली विधियों से सम्बन्ध रखने वाले विषय ही हैं। मैं यह कह सकता हूं कि स्विट्जरलैण्ड तथा न्यूजीलैण्ड के अतिरिक्त अन्य किसी देश ने इन तीनों अधिकारों को, जिन्हें अनुच्छेद 13 में मौलिक अधिकारों के रूप में समाविष्ट किया गया है, मौलिक अधिकार का दर्जा नहीं दिया है। सम्पत्ति अवापन करना, किसी विशेष नगर में बस जाना, देश के किसी भाग में जिसमें किसी व्यक्ति द्वारा चाहे किसी व्यवसाय अथवा व्यापार का करना, वास्तव में मौलिक अधिकार नहीं है। इस कथन के लिये मुझे क्षमा कर दिया जायेगा कि जिन व्यक्तियों ने इन वैधानिक प्रस्तावों को रूपरेखा देने का कार्य किया है उनमें से अधिकांश समाज के सर्वोच्च स्तर के व्यक्ति हैं। आखिरकार वे वही सोच सकते हैं जो उनके मनोविज्ञान, उनके वर्ग तथा उनके समाजस्तर के अनुरूप हैं। इसी दृष्टिबिन्दु से उन्होंने इन तीन अधिकारों का निर्माण किया है। इस बारे में कि ये तीन अधिकार मौलिक हैं अथवा नहीं, यह ठीक होगा कि हम ग्रामीण लोगों तथा प्रदेशों के लोगों के दृष्टिबिन्दु के आधार पर निर्णय करें। मैं तो यह धारणा रखता हूं कि ये अधिकार न होकर देय हैं जिनको ग्रामों तथा प्रदेशों के लोगों पर लादने का प्रयत्न किया गया है। मैं बहुत कुछ चाहता हूं कि मसौदा-समिति और यह परिषद् इन तीनों

अधिकारों को निकाल दे और उनको प्रदेशों के विधान-मण्डलों के स्वविवेकात्मक निर्णय पर छोड़ दे, पर इसके लिये बहुत देर हो गई है और अब तो हमें इन्हें किसी न किसी प्रकार से स्वीकार करना ही पड़ेगा। इससे भविष्य में यह विरोध उत्पन्न होगा कि अपने-अपने क्षेत्रों में जनता के हितों और अधिकारों के संरक्षण के लिये प्रदेश इस विधान द्वारा प्रदत्त इन तीनों अधिकारों में टालमटोल करने का प्रयास करेगा। यह अवश्य होगा। मेरे मन में इस बात के बारे में किसी प्रकार का संशय नहीं है कि यह मुकद्दमेबाजी का एक बड़ा साधन हो जायेगा। कल दैवयोग से मैंने सर आइवर जैनिंग्स की हमारे मौलिक अधिकारों पर सम्मति पढ़ी। वे कहते हैं कि इस अध्याय में जो अधिकार प्रदान किये गये हैं और विशेषकर इस धारा में दिये गये अधिकार इतने उलझे हुये हैं, इनमें इतना वाग्जाल है कि वैधानिक वकीलों के लिये आय का यह एक लाभदायक साधन होगा। इस बात में सच्चाई पर्याप्त मात्रा में है। मौलिक अधिकारों की व्याख्या और परादिकों द्वारा जो वर्जन जोड़े गये हैं उनकी रचना इस प्रकार की है—और उनकी रचना इसी प्रकार से ही हो सकती थी क्योंकि समस्त संकटास्पद स्थितियों का पूर्वानुमान करना असम्भव है—कि मुकद्दमेबाजी इतनी अधिक होगी जितनी हम में से किसी ने भी न कभी देखी हो और न उसका अनुमान ही किया हो। प्रत्येक व्यक्ति जो अपने आपको पीड़ित समझता है वह किसी भी न्यायालय की शरण ले सकता है और सर्वोच्च न्यायालय में व्यक्ति प्रतिव्यक्ति, व्यक्ति प्रति राज्य, राज्य प्रति राज्य और केन्द्रीय सरकार प्रति राज्य सरकार के अभियोगों की भरमार हो जायेगी। यह मुकद्दमेबाजी, मैं तो नहीं समझता हूं, कि देश के हित में सहायक होगी। इसके सम्बन्ध में तो मुझे तर्क करने की आवश्यकता ही नहीं है कि मुकद्दमेबाजी नि:सन्देह दोनों दलों का नाश कर देती है। कन्नाड़ी भाषा में एक कहावत है जिसका अर्थ यह है "अभियोग में जीता हुआ दल हारे हुये के समान है और हारा हुआ दल मरे के समान है"। और जब कभी भी इन खण्डों की व्याख्या के सम्बन्ध मुकद्दमेबाजी होती है राजनैतिक वाद-विवाद भी उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार से मौलिक अधिकार प्रदान करने से—विशेषकर जैसे कि अन्तिम तीन वाक्य-खण्डों में है—इन मौलिक अधिकारों की व्याख्या पर मुकद्दमेबाजी के रूप में लगातार राजनैतिक विप्लव उत्पन्न होते रहेंगे।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन:** उपाध्यक्ष महोदय, इस तथ्य को तो अस्वीकार ही नहीं किया जा सकता कि यह अनुच्छेद इस विधान के मसौदे की आत्मा है। इस अनुच्छेद के अभाव में यह विधान निष्प्राण हो जायेगा। यह भी समझ लेना चाहिये

[काज़ी सैयद करीमुद्दीन]

कि अनुच्छेद 13 के अन्तर्गत रखे गये अधिकार नि:संदेह अविच्छेद्य अधिकार हैं। पर सवाल यह है कि ये अधिकार सरकारों की इच्छा के अधीन होंगे अथवा ये ऐसे सिद्धान्त हैं जिन्हें हम निर्माण कर रहे हैं और जो न तो विधि का ही विषय होंगे और न विधान-मण्डल की इच्छाओं के ही अधीन होंगे। मेरा निवेदन हैं कि अनुच्छेद 13 में उल्लिखित सिद्धान्त ऐसे व्यक्ति के ऐसे मूलभूत अधिकार हैं जिन्हें विधान-मण्डल की इच्छा के अधीन किया ही नहीं जा सकता। किन्तु इस अनुच्छेद के खण्ड (2) से लगायत (6) जनता से उसी आश्वासन को वापस ले लेते हैं जिसके कारण वे निश्शंक रह सकते हैं। अत: मेरा निवेदन है कि खण्ड (2) लगायत (6) बहुत ही खतरनाक खण्ड हैं। मान लीजिये किसी राज्य में एक ऐसा राजनैतिक दल है जो केन्द्रीय सरकार का विरोधी है और वह राजनैतिक अल्पसंख्यकों अथवा धर्मिक अल्पसंख्यकों के लिये बहुत ही घातक कानून निर्माण करता है, तो इस सम्बन्ध में क्या किया जा सकता है? लोगों को कष्ट सहने पड़ेंगे और अकथनीय क्लेश सहने होंगे। विशेषकर "वर्तमान कानूनों के प्रवर्तन के अधीन" शब्द बड़े ही अन्यायपूर्ण हैं। आज भारत में क्या स्थिति है? लगभग वैसी ही है जैसी कि एक घिरे हुये देश की होती है। समस्त प्रान्तों में गुण्डा, लोक-क्षेम इत्यादि अधिनियम लगे हुये हैं जिनकी न तो अपील है और जिनके अनुसार गिरफ्तार करने के लिये न किसी वारण्ट की आवश्यकता है और अनुचित रूप से तलाशी ली जा सकती है। इस सब के बावजूद इस अनुच्छेद में यह बात रख दी गई है कि ये सब कानून मान्य रहे आयेंगे। ये सब कानून, जिनके अधीन न तो अपील हो सकती है और जो न समुचित प्रतिनिधान का प्रावधान करते हैं, ये सब कानून अनुच्छेद 13 के अधीन मान्य रहे आयेंगे। यह बात तो सब जानते हैं कि आजकल हम लोग विकट स्थिति में हैं। किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं कि अनुच्छेद 13 की रचना विकट स्थितियों को ध्यान में रख कर की जाये। अनुच्छेद के एक भाग में शांतिपूर्वक निरायुध सम्मेलन का अधिकार दिया गया है। विधान-निर्माताओं द्वारा इससे अधिक और क्या प्रतिबन्ध लगाया जा सकता था और इसके अतिरिक्त भी राज्य के विधान-मण्डलों को और भी अधिक प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार दिया गया है जैसा कि खण्ड (3) और (4) में दिया हुआ है। अब प्रश्न यह है कि कोई विशेष कानून लोक-हित में है या नहीं, साथ ही यह भी सवाल है कि ऐसा करने का अधिकार न्यायाधीश-वर्ग को सौंपा जाना चाहिये या राज्य के विधान-मण्डलों को। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप यह बात भली प्रकार समझ लें कि मौलिक अधिकारों से सम्बन्ध रखने वाले इन खण्डों का निर्वाचन हम विधान-मण्डलों की इच्छा पर नहीं छोड़ सकते।

प्रत्यक्ष है कि ऐसी अवस्था में राज्यों के विधान-मण्डलों में से प्रत्येक के बहुमत के लिये अल्पमत के प्रति अन्याय करना पूर्णतया सम्भव होगा, चाहे फिर वह अल्पमत राजनैतिक हो अथवा सामुदायिक हो। यदि ऐसा हुआ तो इन मौलिक अधिकारों के रखने का प्रयोजन ही कुछ न रहेगा। सच तो यह है कि ये मौलिक अधिकार रखे ही इसलिये जा रहे हैं जिससे कि विधान-निर्माण की शक्ति सीमित हो जाये। किन्तु खण्ड (2) से लेकर खण्ड (6) तक के खण्डों से हम अनुच्छेद 13 के विस्तार को बढ़ा रहे हैं और साथ ही प्रान्तीय अथवा राज्य के विधान-मण्डलों की शक्ति-सीमा को भी बढ़ा रहे हैं। पर इससे केवल राजनैतिक तथा धार्मिक अल्पसंख्यकों की पूरी हानि होगी। जिस रूप में यह अनुच्छेद है यदि यह इसी रूप में स्वीकार कर लिया जाता है तो मेरा निवेदन यह है कि इससे उन अधिकारों का हरण हो जायेगा जो इस विधान के अनुच्छेद 8 के अन्तर्गत प्रदान किये गये हैं। इन प्रतिबन्धों जैसे प्रतिबन्ध संसार के किसी विधान में नहीं है। अमरीका के विधान में ये समस्त अधिकार न्यायाधीश-वर्ग को सौंप दिये गये हैं केवल इस कारण से कि राजनैतिक दलों को, जिनका समय-समय पर निर्वाचन होता रहता है, कानूनों की व्याख्या करना नहीं सौंपा जा सकता। मुख्य सिद्धान्त तो यह होना चाहिये कि जिसका निषेध नहीं है वह विधिवत् है। इसके अतिरिक्त दो संशोधन पेश किये गये हैं, एक श्री मोहम्मद इस्माइल द्वारा और दूसरा श्री ताहिर द्वारा। मेरा निवेदन यह है कि दोनों संशोधन बड़े ही निर्दोष हैं और अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिये ये दोनों बहुत ही आवश्यक हैं। श्री इस्माइल का संशोधन इस पक्ष को ग्रहण करता है कि वैयक्तिक कानून का सम्मान होना चाहिये और इस बात को विधान में रखना चाहिये। बाहर के लोगों तथा इस विधान-परिषद् के सदस्यों को यह समझ लेना चाहिये कि एक मुसलमान वैयक्तिक कानून को धर्म का अंग समझता है और मैं आपको यह ठीक विश्वास दिलाता हूं कि इस देश में ऐसा कोई भी मुसलमान नहीं है—कम से कम मेरे देखने में तो कोई आया नहीं है—जो कि धार्मिक अधिकारों के आदेशमूलक प्रावधानों तथा वैयक्तिक कानूनों में परिवर्तन चाहता हो और यदि कोई ऐसा व्यक्ति है जो आदेशमूलक सिद्धान्तों अथवा धर्म में वैयक्तिक कानून के रूप में परिवर्तन चाहता है तो वह मुसलमान नहीं हो सकता। इसलिये यदि, आप सचमुच अल्पसंख्यकों की रक्षा करना चाहते हैं—क्योंकि यह असाम्प्रदायिक राज्य है पर इसका आशय यह नहीं है कि लोग किसी धर्म को न मानें—और यदि मुसलमान अल्पसंख्यकों अथवा किसी अन्य अल्पसंख्यक के यही विचार हैं कि वे वैयक्तिक कानून का पालन करना चाहते हैं, तो उन कानूनों की रक्षा करनी चाहिये। श्री ताहिर का संशोधन बड़ा ही

[काज़ी सैयद करीमुद्दीन]

महत्वपूर्ण है और मेरा विचार है कि विधान-परिषद् के प्रत्येक सदस्य ने यह अनुभव किया होगा कि वह महत्वपूर्ण है, क्योंकि 15 अगस्त के पश्चात् हमने देख लिया कि उस साम्प्रदायिक उत्तेजना के लिये मुसलमान उत्तरदायी हैं अथवा हिन्दू, जिससे समाज के समस्त गुणों का लोप हो गया। वह वास्तव में एक ऐसा वर्ण था जो समाज का नाश कर रहा था और वह नाश कर ही देता यदि केन्द्रीय सरकार हस्तक्षेप न करती। और फिर साम्प्रदायिक उत्तेजना को अपराध मान लेना चाहिये। मेरी सम्मति से यह बड़ा प्रमुख संशोधन है जिसको पेश किया जा चुका है और डॉ. अम्बेडकर द्वारा यह स्वीकार किया जाना चाहिये। श्रीमान्, जैसा कि मैंने कहा है, डॉ. अम्बेडकर ने भी अपनी पुस्तक "राज्य और अल्पसंख्यक" में कहा है:

> "मुद्रण, सम्मेलन और परिषद् की स्वतन्त्रता को संकुचित करने वाले कानून नहीं बनाये जायेंगे पर लोक-शान्ति और लोक-शील को विचार में रखते हुये ऐसे कानून बन सकेंगे।"

1947 में वे इस बात से सहमत थे कि अनुच्छेद 13 का प्रथम भाग ही हमारे विधान में रखा जाये परन्तु एक वर्ष में ही उनमें इतना परिवर्तन हो गया कि उन्होंने इतने प्रतिबन्ध लगा दिये कि जो कुछ भी अनुच्छेद 8 द्वारा दिया गया है वे उसे भी छीन लेते हैं।

***उपाध्यक्ष:** आप इस बात में गलती करते हैं कि डॉ. अम्बेडकर ही विधान के मसौदे से सम्बन्धित प्रत्येक बात के लिये उत्तरदायी हैं। पूरी की पूरी मसौदा-समिति पर यह उत्तरदायित्व है।

काज़ी सैयद करीमुद्दीन: मेरा निवेदन यह है कि यदि आप इस सभा के अल्पसंख्यकों की सम्मति लें—एक सिख प्रतिनिधि तो बोल ही चुके हैं और अब मैं बोल रहा हूं—और यदि आप मत लें तो आपको विदित होगा कि देश के अल्पसंख्यक यह कहेंगे कि अनुच्छेद 13 से उनका पर्याप्त संरक्षण न होगा। इसलिये मैं गम्भीरतापूर्वक निवेदन करता हूं कि (2) से (6) तक के खण्डों को निकाल दिया जाये। मैं अन्य दो संशोधनों का जिनका मैंने उल्लेख किया है जोरदार समर्थन करता हूं। जिस रूप में अनुच्छेद 13 है यदि यह इसी रूप में स्वीकार किया जाता है तो वह अल्पसंख्यकों को मान्य नहीं होगा। यह कोई भाषण-स्वतन्त्रता नहीं है जिसकी आप प्रत्याभूति कर रहे हैं। यह कोई मुद्रण सम्बन्धी स्वतन्त्रता नहीं हैं जिसे आप प्रदान कर रहे हैं। आप एक हाथ से दे रहे हैं और दूसरे से ले रहे हैं।

***चौधरी रणवीर सिंह** (पूर्वी पंजाब : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं उन सज्जनों से सहमत नहीं हूं जो इस अन्तर्तर्ती काल में इन प्रावधानों के हटाने के पक्ष में हैं। इसी कारण मैंने अनुच्छेद 13 में दो और प्रावधानों की सूचना दी है। वे निम्न रूप में हैं कि:

"अनुच्छेद 13 में निम्न नये (7) और (8) खण्ड जोड़ दिये जायें:

'(7) इस खण्ड के उपखण्ड (घ), (ङ) तथा (च) की किसी बात से किसी ऐसी वर्तमान विधि के प्रवर्त्तन पर प्रभाव न होगा और न राज्य को कोई ऐसी विधि बनाने में रुकावट होगी जो भूमि को जोतने वालों अथवा कृषकों के हित की रक्षा के लिये उन लोगों पर, जो खेतिहर नहीं हैं कृषि-भूमि की अवाप्ति अथवा संधारण के बारे में आयंत्रण लगाती है।

(8) उक्त खण्ड (घ), (ङ) और (च) उपखण्डों की कोई बात राज्य को न्यूनातिन्यून अविच्छेद्य भूमि के आर्थिक संधारण की घोषणा करने वाले कानून के निर्माण करने से नहीं रोकेगी।' "

श्रीमान्, आगे और विचार करने पर मैंने अपने विचार बदल दिये और इन संशोधनों को पेश नहीं किया, क्योंकि मैंने सोचा कि इस अनुच्छेद के उपखण्ड (5) में "जन-सामान्य के हित में" शब्द से मेरा आशय पूर्णतया पूरा हो जाता है अर्थात् कृषि करने वालों अथवा मजदूरों के हितों की रक्षा के लिये जब कभी प्रतिबन्धों का लगाना आवश्यक समझा जायेगा, सरकार को यह अधिकार होगा कि वह समाज के किसी वर्ग पर प्रतिबन्ध लगा दे अथवा उन कानूनों को जो लागू हैं लागू रहने दे और जिनके बारे में सरकार यह समझे कि किसानों अथवा मजदूरों के हितों की रक्षा के लिये वे आवश्यक हैं।

मैं पूर्वी पंजाब से आया हूं और वहां एक ऐसा कानून है जो भूमि-विच्छेद अधिनियम के नाम से प्रसिद्ध है और जिसके अनुसार कुछ वर्गों को कानून से भूमि अवापन करने का अधिकार नहीं है। मैं अपने मित्रों, विशेषकर हरिजनों से इस बात में सहमत हूं कि हरिजनों तथा अन्य लोगों को जो कि वास्तव में कृषि करने वाले हैं, भूमि अवापन का अधिकार हो। पर मैं यह नहीं समझ पाता कि प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह कृषि करता हो या नहीं कृषकों के समान समझा जाये और उसे कृष्य भूमि अवापन करने की स्वतंत्रता हो। यदि यह दशा होगी तब तो हम एक नई समस्या खड़ी करेंगे—जमींदारी की समस्या—वह समस्या जिसे हम

[चौधरी रणवीर सिंह]

देश से मिटा रहे हैं अथवा मिटाने का वचन दे चुके हैं। अनेकों प्रान्तों में जमींदारी-प्रथा मिटाने का कानून बन चुका है। पंजाब के सम्बन्ध में मेरा विचार है और इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि भूमि-विच्छेद अधिनियम के फलस्वरूप पंजाब में जमींदारी-प्रथा का अभाव है और जिस उग्र रूप में यह अन्य प्रान्तों में है वैसे रूप में यहां नहीं है और यही वास्तविक कारण है कि अन्य प्रान्तों की अपेक्षा पंजाब के किसान अधिक उन्नत अवस्था में हैं। अत: मेरा यह पुष्ट और ठीक विचार है कि राज्य के विधान-मण्डलों तथा विभिन्न सरकारों को अकृषकों पर कृष्यभूमि के अवापन करने और संधारण के बारे में प्रतिबन्ध लगाने की स्वतंत्रता हो और कृषि करने वाले अथवा किसानों की रक्षा के लिये न्यूनातिन्यून अविच्छेद्य भूमि के आर्थिक संधारण की घोषणा करने की स्वतंत्रता हो।

हमारे देश की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग कृषि पर निर्भर है और वे ही कृषि करने वाले हैं। अत: "जन-सामान्य के हित" शब्दों का आशय केवल कृषकों और मजदूरों से ही है न कि केवल मध्यवर्गीय बौद्धिक तथा श्वेतवस्त्रधारी वाचाल लोगों से।

***उपाध्यक्ष:** मौलाना हसरत मोहानी (करतल ध्वनि)—मुझे हर्ष है कि मौलाना हसरत मोहानी ने इस देश की जो बड़ी-बड़ी सेवायें की हैं उन्हें सभा प्रमाणित करती है। वे अपनी मातृभूमि की पूर्ण स्वतंत्रता के पक्ष के समर्थन करने वाले प्रथम व्यक्ति थे।

मौलाना हसरत मोहानी (संयुक्तप्रांत : मुस्लिम): जनाब आली, मैं इस वक्त जो खड़ा हुआ हूं तो पहले मेरा ख्याल था कि मैं सिर्फ मिस्टर कामत ने जो तरमीम पेश की है, उसकी तहेदिल से ताईद करूं। और अब भी मैं इस ख्याल से यहां आया हूं कि बाद में और जो तकरीरें हुईं और जो बहुत-सी तरमीमात पेश हुईं, उनमें से मैं एक तरमीम जो मि. मोहम्मद इस्माइल मद्रास ने पेश की है, उसकी पूरी ताईद करता हूं और इसके अलावा जो तरमीम मिस्टर के.टी. शाह ने पेश की है, उसकी भी ताईद करता हूं। इसमें मि. मोहम्मद इस्माइल की जो तरमीम है, उसका जो दूसरा हिस्सा है, उसमें वह पर्सनल लिबर्टी का जिक्र करते हैं। मिस्टर के.टी. शाह की जो तरमीम है, वह भी इसी तरह की हैं। इनके मुताल्लिक मैं अखीर में अर्ज करूंगा। सबसे पहले मैं मि. कामत की तरमीम की पूरी ताईद करना चाहता हूं। मि. कामत ने जो यह बात कही है कि हर एक शख्स

को इसका हक होना चाहिये कि वह हथियार रख सके। यह एक टेस्ट अमेण्डमेण्ट है। अगर डॉक्टर अम्बेडकर और उनकी कमेटी दयानतदार है, तो उनको बिना शुबाह इस सेक्शन को मंजूर करके इसको फौरन इसमें दाखिल करना चाहिये। अगर वह इसमें किसी किस्म का हजर-बजर या उज्र करें जैसा कि वह मुझे उम्मीद है कि कर सकते हैं क्योंकि डॉक्टर अम्बेडकर की कानूनी काबलियत मुसल्लिमा है। वो अगर यह चाहें तो दिन को रात और रात को दिन कर सकते हैं और इसको ऐसा करके निकाल सकते हैं। तो मैं उनसे यह कहूंगा कि यह एक टेस्ट अमेण्डमेण्ट है और अगर इसको दाखिल नहीं करेंगे तो इसके माने यह होंगे कि आपकी टेन्डेन्सी भी इसी तरफ है जिस तरफ कि ब्रिटिश गवर्नमेंण्ट की थी। आपको मालूम है कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने क्या किया था। उन्होंने हिंदुस्तान के ऊपर 'आर्म्ज़ एक्ट' लगा दिया था। इसका नतीज़ा यह हुआ था कि हिन्दुस्तान के कुल रहने वाले बिल्कुल बेकार होकर रखे गये थे। अगर आपकी मन्शा भी यही है तो वह अलग बात है। लेकिन अगर यहां पर कौमी हुकूमत है और हिन्दुस्तानी गवर्नमेण्ट है तो कोई वजह नहीं कि आप किसी शख्स को उस हक से महरूम करें। अगर आप 'आर्म्ज़ एक्ट' को बना कर इसमें शामिल करेंगे और लोगों को यह हक नहीं देंगे तो मैं यह कहूंगा कि आपका ऐटीट्यूड और तरीका इससे भी बदतर है जो कि ब्रिटिश गवर्नमेंट का था। It will be in the worst form ब्रिटिश गवर्नमेंट ने जो 'आर्म्ज़ एक्ट' बनाया था, वह मासवाय रूलिंग सेक्शन के हर एक पर लागू था। हमारा यह ख्याल था कि जब हमारी अपनी हुकूमत होगी तो ऐसा नहीं होगा। बदकिस्मती से यहां पर इस वक्त पार्टी गवर्नमेण्ट है और वह इसको इसमें इस वजह से रखना चाहते हैं कि जो उनके पोलिटिकल अपोनेन्ट्स हैं, उनके खिलाफ यह 'आर्म्ज़ एक्ट' जारी किया जाये। और जो उनके अपनी पार्टी के आदमी हैं, उन पर लागू न किया जायें।

मैं अपने इस जाती तजुरबे की बिना पर जो कि मुझे यू. पी. के मुताल्लिक है, अर्ज करना चाहता हूं। मैं खासकर कानपुर शहर, जिसको कि मैं रिप्रेजेण्ट करता हूं, के मुताल्लिक अर्ज़ करूंगा कि वहां पर यू.पी. गवर्नमेण्ट ने तमाम उन पार्टियों पर जिनसे उनको यह खौफ था कि वह आयन्दा जनरल इलेक्शन में उनके खिलाफ खड़े होंगे, ख्वाह वह सोशलिस्ट पार्टी के थे या कम्युनिस्ट पार्टी के थे या इण्डिपेन्डेण्ट सोशलिस्ट पार्टी के थे, जिसमें तमाम मुसलमान आते हैं या फारवर्ड ब्लाक के थे या और भी वह लोग जिन पर कि उनको यह शबाह था कि वह उनके खिलाफ इलेक्शन में खड़े होंगे, उन पर छांट-छांट कर पाबन्दी

[मौलाना हसरत मोहानी]

लगा दी और किसी न किसी बहाने से 'डिफेन्स ऑफ इण्डिया एक्ट' की जद में लाया, किसी को गुंडा बना कर और किसी को कम्युनिस्ट बनाकर और किसी को यह कह कर कि वह हैदराबाद को सपोर्ट करता है और वहां के लिये चन्दा जमा करता है और किसी को यह कह कर कि वह कम्युनिस्टों की इस पार्टी से ताल्लुक रखता है जो कि 'अण्डर ग्राउण्ड' कार्यवाहियां करते हैं, जेल भिजवाया गया। गर्ज यह है कि तमाम रायल पोलिटिकल पार्टी के खिलाफ उन्होंने इस चीज को आयद कर दिया और मुसलमानों के साथ यहां तक भी किया गया कि जो कोई भी पोज़ीशन वाला मुसलमान कानपुर में रहता था, उसके घर की तलाशी ली गई और उसके घर से अगर एक छुरी जो कि बावर्चीखाने में तरकारी काटने के काम आती है, भी निकली तो उसको आर्म्ज़ एक्ट की ज़द में लाकर जेलखाने भेज दिया। उनमें से बाज को तो छोड़ दिया गया है, और बाज अभी भी जेलखाने में है। इसलिये मैं आपसे यह अर्ज करूंगा कि आप जो कि एक पार्टी गवर्नमेण्ट हैं, यह आपके लिये एक टेस्ट है। आपको चाहिये कि आप मिस्टर कामत की तरमीम को मन्जूर करके हर एक आदमी को आर्म्ज़ रखने का हक दे दें। अगर आप ऐसा नहीं करेंगे तो आप इंग्लिश ब्यूरोक्रेसी के बजाय इण्डियन ब्यूरोक्रेसी की मिसाल कायम करेंगे।

दूसरी बात जो मैं अर्ज करना चाहता हूं, वह यह है कि मि. मोहम्मद इस्माइल और प्रोफेसर शाह दोनों की तरमीमात एक ही मजमून की हैं। हमारी प्राइवेट लिबर्टी और पर्सनल राइट्स के बारे में मैं यह कहना चाहता हूं कि जब तक आप किसी कोर्ट में मुकद्दमा करके ऐलानिया किसी के खिलाफ कुछ साबित नहीं कर सकते तब तक डिफेन्स ऑफ इण्डिया के रूल्स लागू करके किसी को भी चाहे वह आपकी रायल पोलिटिकल पार्टी का हो या किसी और पार्टी का हो अगर बन्द करें तो वह जायज़ नहीं है। अगर आपने 'डिफेन्स ऑफ इण्डिया रूल' के तहत या किसी और आर्डिनेन्स के तहत किसी को आज जेल में भेज दिया तो हैवियस कार्प्स का क्या होगा वह कहां पर होगा। क्योंकि हाईकोर्ट को उसमें दखल देने का हक ही नहीं है। अगर 100 में से किसी एकाध केस में दखल दिया भी हो तो इसका मतलब यह नहीं है कि आमतौर पर ऐसा किया है। इसलिये मैं यह अर्ज करता हूं कि इस चीज को न रखा जाये और हर एक को पर्सनल लिबर्टी हो।

तीसरी बात मैं मुख्तसरन अर्ज करूंगा वह यह कि जो मेरे दोस्त मिस्टर मोहम्मद इस्माइल ने कही है जिसकी बहुत से लोगों ने ताईद की है। मैं यह कहना चाहता हूं कि किसी को भी चाहे वह पोलिटिकल पार्टी का हो, चाहे वह कम्यूनल पार्टी का हो, किसी को भी किसी के पर्सनल लॉ में दखल देने का हक नहीं

है। मैं खुसूसन मुसलमानों के मुताल्लिक कहता हूं कि उनके पर्सनल लॉ में जो तीन चीजें हैं, यानी रिलीजन, लैंग्वेज और कलचर, वह किसी आदमी ने नहीं बनाये हैं। बल्कि उनके पर्सनल लॉ जो तलाक, निकाह और विरासत के मुताल्लिक हैं, वह कुरान में से हैं। और उनकी तशरीह वहां मौजूद है। अगर किसी के दिमाग में यह बात है कि वह मुसलमानों के पर्सनल लॉ में दखल दे सकता है तो मैं उससे यह कह दूंगा कि इसका नतीजा बहुत ही बुरा होगा।

*[मैं इस सभा में यह कह सकता हूं कि उनको दु:ख होगा। अपने वैयक्तिक कानून में किसी प्रकार के हस्तक्षेप को मुसलमान सहन नहीं करेंगे। यदि कोई ऐसा कहने का साहस करता है तो मै यह घोषणा करता हूं कि.....।]

***उपाध्यक्ष:** शान्ति, शान्ति।

***मौलाना हसरत मोहानी:** उसको इस बात में विश्वास करना चाहिये कि अपने वैयक्तिक कानून में किसी प्रकार के हस्तक्षेप को मुसलमान सहन नहीं करेंगे और उनको मुसलमानों के हर प्रकार के दृढ़ विरोध का कड़ा मुकाबला करना होगा।

(बाधायें)

***श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या आप उन लोगों को नर-बलि देने का अधिकार देंगे जो उसमें विश्वास करते हैं और अपने वैयक्तिक नियम के बहाने उसकी मांग करते हैं?

(बाधायें)

***उपाध्यक्ष:** क्या माननीय सदस्य कृपा कर अपने-अपने स्थान ग्रहण करेंगे?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): मैं अनुच्छेद 13 को उसके समस्त अपवर्जनों तथा संरक्षणों के सहित समर्थन करता हूं। हमारे राष्ट्रीय हित के लिये ये प्रतिबन्ध आवश्यक हैं। इस कथन को मैं प्रमाण देकर पुष्ट करूंगा।

***एक माननीय सदस्य:** क्या माननीय सदस्य अपना भाषण पढ़ रहे हैं?

***उपाध्यक्ष:** वे अपना भाषण पढ़ रहे हैं और ऐसा करने के लिये मैंने उनको आज्ञा दे दी है।

श्री ब्रजेश्वर प्रसादः यदि पूंजीवाद की धमकी का सामना करना है तो वैयक्तिक स्वतंत्रता को कम करना ही होगा। उन्नीसवीं शताब्दी के राष्ट्रीय राज्यों को उन संकटों का तनिक भी सामना नहीं करना पड़ा जिनका आधुनिक राज्य को सामना करना पड़ता हैं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के राजनैतिक षड्यन्त्रों से लोग उस समय अपरिचित थे। राजनैतिक अपराधी अपनी पापयुक्त योजनाओं की पूर्ति के लिये जिन विधियों और चालों की शरण लेता था उनसे प्राचीन काल के प्रशासक भली प्रकार परिचित है। कनून और न्यायिक संस्थाऐं इन परिस्थितियों का सामना करने के लिये यथेष्ट रूप में शक्तिशाली थीं। जिन चालों और विधियों का आधुनिक कानून तोड़ने वालों द्वारा अधिकतर प्रयोग किया जाता है उनको उन्नीसवीं शताब्दी के सामान्य कानूनों तथा न्यायिक संस्थाओं द्वारा नहीं रोका जा सकता है। यदि उस शोषक वर्ग को समाप्त करना है जो लाभ तथा शोषण द्वारा उन्नत होता है और यदि हमारे आधुनिक जीवन की समस्त संस्थाओं की सुरक्षा तथा सत्ता को साम्यवादियों द्वारा संकट में डाले जाने से बचाना है तो राज्य को बृहद् स्वविवेकात्मक अधिकार प्रदान करने चाहिये और वैयक्तिक स्वतन्त्रता को बहुत कम कर देना चाहिये।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): माननीय सदस्य अपना भाषण इतनी जल्दी-जल्दी पढ़ रहे हैं कि हम उसको समझ नहीं सकते हैं। क्या मैं यह निवेदन करूं कि यह मान लिया जाये कि उनका भाषण पढ़ा गया।

***उपाध्यक्षः** श्री ब्रजेश्वर प्रसाद, क्या आप इस बात से सहमत हैं कि यह मान लिया जाये कि आपका भाषण पढ़ा गया? (कुछ देर ठहर कर) माननीय सदस्य श्री रोहिणी कुमार के सुझाव से श्री ब्रजेश्वर प्रसाद सहमत नहीं हैं?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** राज्य के प्रति शंका करना गलत है। आज राज्य की बागडोर ऐसे मनुष्यों के हाथों में है जो लोगों की किसी प्रकार की हानि करने में पूर्णतया असमर्थ हैं। ऐसी सम्भावना नहीं है कि वह बागडोर ऐसे लोगों के हाथों में पहुंच जायेगी जो जनता के विरोधी हैं। यदि राज्य की बागडोर प्रतिक्रियावादियों के हाथों में पहुंच गई तो वैयक्तिक स्वतंत्रता की वैधानिक प्रत्याभूति अधिक काल तक के लिये अक्षुण नहीं रह पायेगी। यदि आप राजनैतिक प्रतिक्रियावादियों के राजनैतिक अधिकार प्राप्त करने और उनके प्रभुत्व को रोकना चाहते हैं तो देश के शासकों को व्यापक स्वविवेकात्मक अधिकार देने चाहियें।

आधुनिक उन्नतशील राज्य में व्यक्ति और राज्य में परस्पर कोई अधिक झगड़ा नहीं है। क्योंकि राज्य का निर्माण व्यक्तियों से होता है। हम स्वयं ही स्वार्थ से विमुख तथा परे होकर राज्य का रूप हैं। व्यक्ति की राज्य से पृथक् तथा अभिन्न कोई अपनी शक्ति नहीं है। राज्य और व्यक्ति एक ही मुद्रा के दो रुख हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी में अधिशासी-वर्ग ने आधुनिक राज्य की रचना और कला में प्रगति नहीं की। नागरिकों के जीवन से उसका बहुत कम सम्बन्ध था। आधुनिक राज्य के अधिशासी-वर्ग को इस सम्बन्ध में प्रमुख भाग लेना होगा। कौशल के किसी अभाव द्वारा उसमें विघ्न नहीं होना चाहिये। यदि राज्य को यथेष्ट अधिकार नहीं दिये गये तो आधुनिक जीवन, समाजवाद और समुदायवाद की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो सकती। आधुनिक राजनीति का झुकाव विचार और शील के वर्गीकरण की ओर है। मिल और स्पेन्सर के सिद्धान्त युग की आवश्यकताओं और मांगों से पूर्णतया असम्बद्ध हो गये हैं। राजनैतिक विचारकों तथा वास्तविक प्रशासकों इन दोनों की ही चिन्ताओं तथा वफादारी का सर्वप्रथम पात्र समाज है न कि व्यक्ति। आधुनिक जीवन की वास्तविक परिस्थितियों ने व्यक्ति को आदर और गरिमा के उस उच्च शिखर से, जहां पर उसको व्यक्तिवाद ने बिठा रखा था, हटाकर उपेक्षा तथा महत्वहीनता की स्थिति में रख दिया है।

ऐसे समाज में वैयक्तिक स्वतंत्रता संकटास्पद है जिसमें 80 प्रतिशत से भी अधिक मनुष्य निर्धनता, निरक्षरता, साम्प्रदायिकता और प्रान्तीयता के गहरे दलदल में फंसे हुये हैं।

यह विचारना केवल भ्रम मात्र है कि यदि इन वैयक्तिक अधिकारों को स्पष्ट भाषा में बिना किसी प्रतिबन्धों तथा संरक्षणों के विधान में निर्धारित कर दिया जाता है, तो उनको दृढ़ता से प्राप्त किया जा सकेगा। इन अधिकारों का उपभोग किसी भी विधान की परिधि के बाहर कुछ सामाजिक शर्तों के पूरी होने पर निर्भर है। मनुष्य वैयक्तिक स्वतंत्रता का तब तक कदापि उपभोग नहीं कर सकता जब तक समाज पूंजीवाद के आधार पर संगठित है, जब तक युद्ध तथा विदेशियों के हस्तक्षेप की आशंका है और जब तक निर्धनता, निरक्षरता, साम्प्रदायिकता तथा प्रान्तीयता हम में वर्तमान है। संगठित धर्मों की शक्ति के क्षीण होने पर और आर्थिक समानता तथा राजनैतिक स्वातंत्र्य के आदर्शों पर आश्रित संसार-राज्य की स्थापना होने पर ही मनुष्य वैयक्तिक स्वतंत्रता प्राप्त कर सकेगा।

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

यह पूर्णतया विधान-निर्माताओं की दुष्टता अथवा अज्ञानता के कारण नहीं है कि वैयक्तिक अधिकारों पर इतने प्रतिबन्ध लगे हुये हैं। शताब्दियों से पिछड़े रहने और विदेशी कुशासन की विरासत को लेखनी की एक रेखा द्वारा नहीं मिटाया जा सकता। किसी युग की दुर्व्यवस्था का निराकरण वैधानिक प्रत्याभूतियों द्वारा नहीं किया जा सकता। वैधानिक प्रत्याभूतियां केवल उन वैयक्तिक अधिकारों को प्राप्त करने में सुविधा प्रदान करती हैं जिनका रूप मुख्यतया आन्तरिक हो और जो तर्क तथा उचित आचरण द्वारा प्राप्त किये जा सकें। यदि हम वैयक्तिक स्वतंत्रता प्राप्त करना और उसका उपभोग करना चाहते है तो हमें ठीक प्रकार से विचार करना, बोलना और कार्य करना चाहिये। साम्प्रदायिकता के आधार पर शिक्षा की उन्नति तथा प्रगति से ही वैयक्तिक स्वतंत्रता की नींव दृढ़ आधार पर रखी जा सकती है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, क्या मैं अपने मित्र से यह निवेदन कर सकता हूं कि वे यदि अन्य विराम चिह्न न रखें तो कम से कम कुछ पूर्ण विराम तो रखें ही?

***उपाध्यक्षः** माननीय सदस्य का समय समाप्त हो चुका है। परन्तु श्री कामत ने जो कुछ कहा है उससे किसी प्रकार से भी सभा की प्रतिष्ठा नहीं बढ़ी।

प्रोफेसर यशवन्त राय (पूर्वी पंजाब : जनरल): माननीय अध्यक्ष महोदय, पंजाब के हरिजन ड्राफ्टिंग कमेटी के प्रधान के बहुत ज्यादा आभारी हैं कि उन्होंने कांस्टीट्यूशन के अन्दर आर्टिकिल 13 को रखा है। आज तक पंजाब के अन्दर यह प्रथा है कि एक खास कम्यूनिटी ही जमीन खरीद सकती है और खेती-बाड़ी का काम कर सकती है। लेकिन हरिजन जिनमें 90 प्रतिशत ऐसे लोग हैं जो खेती-बाड़ी का काम करते हैं उनको जमीन खरीदने की इज़ाज़त नहीं है और न वह अपने मकान बनाने के लिये ही ज़मीन खरीद सकते हैं। लेकिन इस आर्टिकिल के पास हो जाने से उनको यह सुविधा मिल जायेगी कि वह अपने मकान बनाने और रहने के लिये ज़मीन खरीद सकते हैं, और साथ ही खेती-बाड़ी करने के लिये अगर उनके पास इतनी शक्ति हो तो वह ज़मीन खरीद सकते हैं। इसलिये मैं समझता हूं कि जो तकलीफें पंजाब के हरिजनों को हो रही हैं, गांव-गांव के अन्दर जमींदार और उनके बीच क्लैशैज़ हो रहे हैं और कहीं-कहीं पर उनको मकानों से बाहर तक नहीं जाने दिया जाता है, और बहुत-सी मुसीबतों का सामना करना पड़ रहा है, ऐसी बातें भविष्य में नहीं होंगी। लेकिन जो मुसीबतें

आजकल उन पर आ रही हैं वह इसलिये हैं कि उनका यह ख्याल था कि कांग्रेस गवर्नमेंट हमारी ही नेशनल गवर्नमेण्ट होगी और उसके पावर में आने पर हमको मकान बनाने और ज़मीन खरीदने की इजाजत मिल जायेगी और जो तकलीफें हमारी हैं वह सब दूर हो जायंगी। हमारी इण्डियन नेशनल कांग्रेस का यह क्रीड था कि राज्य स्थापित होने पर सबको घर बनाने और खेती-बाड़ी की और किसी भी किस्म की तकलीफ नहीं होगी। इस बात को आप भी महसूस करते हैं कि हरिजनों को यह चीजें मिल जानी चाहियें क्योंकि हमारी जो कांग्रेस गवर्नमेण्ट है वह अब स्थापित हो चुकी है।

इसलिये आर्टिकिल 13 में, क्लाज एफ बहुत ही जरूरी है क्योंकि इसमें हमारे लिये वह सहूलियतें जो हम चाहते थे मिल गई हैं। जो दिक्कतें आजकल हमें पेश आ रही हैं मेरे ख्याल में अब वह काफूर हो जायेंगी। इसलिये मैं इस आर्टिकिल का समर्थन करता हूं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** उपाध्यक्ष महोदय, हमारे नये विधान में से "राजद्रोह" शब्द को निकाल देने का जो निश्चय सभा ने किया है मुझे उसके लिये सभा को बधाई देनी चाहिये। यह अभागा शब्द "राजद्रोह" इस देश में अनेकों क्लेशों का कारण रहा है और हमारी स्वतंत्रता प्राप्ति को यथेष्ट समय तक के लिये रोके रहा है।

फिर भी इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में मैं सभा का ध्यान उस स्थिति की ओर आकर्षित करना चाहता हूं जो हमारे तथा वनजाति-क्षेत्रों के लोगों में उत्पन्न हो गई है। ब्रिटिश सरकार इन क्षेत्रों को अपने रक्षा स्थानों के रूप में ही रखना चाहती थी और एक क्षण के लिये भी उसने यह नहीं सोचा कि उसे किसी समय इस देश को छोड़ना होगा। वे वनजाति के लोगों को सदैव के लिये पूर्णतया अपने अधिकार में रखना चाहते थे और पहाड़ों को वे अपने सुरक्षित स्थानों के रूप में रखना चाहते थे और इसलिये उन्होंने ऐसे नियम बना दिये थे जिनके द्वारा समतल भूमि का रहने वाला सामान्य व्यक्ति पहाड़ों में रहने वाले अपने भाइयों से नहीं मिल सकता था। श्रीमान्, मुझे हर्ष है कि इस अनुच्छेद में हमने यह निर्धारित किया है कि भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र में सब लोग अबाध यात्रा कर सकेंगे। परन्तु यह बड़े दुर्भाग्य की बात हैं कि हम उस परादिक का निराकरण नहीं कर सकते जिसमें यह कहा गया है कि कोई विशेष राज्य ऐसा कानून बना सकता है जिसके द्वारा पर्यटन की इस स्वतंत्रता को प्रतिबन्धित किया जा सकेगा। श्रीमान्,

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

मैं सभा का ध्यान केवल एक बड़ी दु:खपूर्ण घटना की ओर आकर्षित करूंगा जो स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हुई है। कुछ मास पूर्व केन्द्रीय विधान-मण्डल के कुछ सदस्यों को हमारे माननीय मित्र श्री के. सन्तानम् के नेतृत्व में मनिपुर राज्य में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यद्यपि प्रान्तीय सरकार के अफसरों ने हमें वहां स्वतंत्रतापूर्वक जाने की आज्ञा दे दी परन्तु मनिपुर राज्य की आज्ञा से हमको उसके अन्दर घुसने से पूर्व एक घंटे से अधिक रुके रहना पड़ा। मेरा विश्वास है कि इस विधान के पारित होने के पश्चात् ऐसी स्थिति कभी भी उत्पन्न नहीं होगी और यह कि इस विधान के पारित होने के सद्योपरान्त ही इस बात की कार्यवाही की जायगी कि हम राज्यों के उन भागों में जिनमें अब अनुसूचित वनजातियां बसी हुई हैं स्वतंत्रतापूर्वक आ-जा सकें। अनुसूचित वनजातियों और समतल भूमि में रहने वाले लोगों में परस्पर और भी अधिक मैत्री होनी चाहिये और इन स्थानों में पर्यटन सम्बन्धी रुकावटों को दूर करने के लिये पूरी-पूरी कार्यवाही करनी चाहिये।

तत्पश्चात्, श्रीमान्, मुझे यह जान कर खुशी हुई कि भारत के किसी भी भाग में अपना व्यवसाय करने के लिये लोग स्वतंत्र होंगे। जहां तक यह कागज़ पर है, वहां तक तो बहुत ही अच्छा है, पर अनेकों बार ब्रिटिश सरकार ने कहा था कि वह इन पहाड़ियों में से किसी पहाड़ी में भी किसी व्यक्ति को कभी भी वकालत नहीं करने देगी। श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि विधान के इस अनुच्छेद के पारित हो जाने के पश्चात् इस बात की कार्यवाही की जायेगी कि भारत के किसी भाग में किसी व्यक्ति को कोई भी व्यवसाय करने में यदि कोई प्रतिबन्ध हो तो उसे दूर किया जाये।

अब यह मेरा दुर्भाग्य है कि प्रोफेसर शाह के संशोधन संख्या 416 पर मुझे कुछ शब्द कहने पड़ रहे हैं। किसी ऐसे व्यक्ति के संशोधनों पर विचार करना, जो अपने संशोधनों को लिखता है और उन पर विचार करता है, बहुत ही सरल है। परन्तु किसी ऐसे व्यक्ति के संशोधनों पर विचार करना बहुत कठिन तथा संकटापन्न है जो अपने समस्त हजारों संशोधनों को अपने मस्तिष्क में लेकर चलता है और उनको सीधे इस सभा में अपने मस्तिष्क से बाहर निकालता है। श्रीमान्, संशोधन संख्या 416 उन समस्त बातों के बारे में कुछ शब्दों का पुर:स्थापन करता है, जो इस विधान के प्रावधानों के अधीन हैं। परन्तु हमें यह

विदित है कि सभा ने इन शब्दों को "इस विधान के प्रावधानों के अधीन" हटाना स्वीकार सा ही कर लिया है। लेकिन हम यह देखते हैं कि प्रोफेसर साहब ने उसी वाग्जाल को उस संशोधन में रख दिया है। क्या वे विधान में इन शब्दों को तुकबन्दी के लिये प्रयोग करना चाहते हैं? कवि अनेकों शब्दों को केवल तुकबन्दी के लिये प्रयोग करने के शौकीन होते हैं। यदि इन शब्दों का प्रयोग केवल तुकबन्दी के लिये है तब तो मैं इसे मान सकता हूं अन्यथा मेरे विचार से तो वे निरर्थक हैं। मैं अपने मित्रों को 'guaranteed' शब्द के प्रयोग के विरुद्ध सचेत करूंगा। श्रीमान्, हमने विविध वस्तुओं के प्रति प्रत्याभूति का वचन देते हुये विज्ञापन देखे हैं। मैं स्वयं एक ऐसे विज्ञापन के फेर में आ चुका हूं। एक बड़े पूरे पृष्ठ का विज्ञापन किसी दवा की प्रत्याभूति करता था कि यदि आप सात दिन तक उस दवा का सेवन करेंगे तो आपके स्वास्थ्य में उन्नति होगी और आप सैण्डो के सदृश शक्तिशाली हो जायेंगे। "प्रत्याभूति" शब्द वहां वर्तमान था। परन्तु सात या चौदह दिन उस दवा का सेवन करने के पश्चात् मुझे यह विदित हुआ कि उसका कुछ भी असर नहीं है। उससे मेरे स्वास्थ्य में कुछ भी उन्नति नहीं हुई। बाजार में अनेकों रत्नों के सम्बन्ध में भी, यद्यपि वे सब रासायनिक रत्न होते है, सौदागर इस बात की प्रत्याभूति देते हैं कि रत्न अपनी चमक तथा गुणों को कायम रखेंगे। परन्तु एक पखवाड़े के पश्चात् ही चमक उड़ जाती है और रत्न काले पड़ जाते हैं। इसलिये "प्रत्याभूति" शब्द का प्रयोग बहुत ही संकटापन्न है। इस देश में इस शब्द के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है। भारत में हम इस शब्द के इतने अभ्यस्त हो गये है कि जब हम इसका प्रयोग देखते हैं तभी हम इस पर शंका करने लगते हैं। जब हम किसी वस्तु को प्रत्याभूति सहित देखते हैं हम समझ जाते हैं कि यह प्रत्याभूति रहित है और असली नहीं है। इसलिये यह अच्छा होगा कि विधान को बिना 'प्रत्याभूति' शब्द के ज्यों का त्यों रहने दिया जाये। इस शब्द के अभाव में हम उसे अच्छी तरह समझ सकते हैं। और तभी हम यह समझेंगे कि किसी अनिच्छित बात को छिपाने का प्रयत्न नहीं किया गया है। खण्ड ज्यों का त्यों बिना 'प्रत्याभूति' शब्द के बिलकुल ठीक है।

श्रीमान्, स्वीकृत संशोधनों सहित इस अनुच्छेद पर मेरी हार्दिक स्वीकृति है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में यह सत्यरूप में कहा जा सकता है कि यह हमारी स्वतंत्रता का अधिकार-पत्र है और समस्त विधान के मसौदे में कदाचित् यही सब से अधिक महत्वपूर्ण अनुच्छेद है। जिस मूल रूप में यह सभा के समक्ष रखा गया

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

था उस पर अनेकों आलोचनायें हो सकती थीं और वे उचित ही थीं। अब मेरे विचार से उसमें वस्तुत: परिवर्तन कर दिया है। श्री भार्गव तथा अन्य सदस्यों के संशोधनों को स्वीकार करने का जो वचन डॉ. अम्बेडकर ने दिया है उससे मुझे आशा होती है कि यह अनुच्छेद अपने अन्तिम रूप में हमारी स्वतंत्रता का वास्तविक अधिकार-पत्र होगा।

श्रीमान्, मेरे मित्रों द्वारा पेश किये गये कुछ संशोधनों की जो आलोचना की गई है उसका हमको विश्लेषण करना चाहिये। सर्वप्रथम यह आलोचना की गई है कि समस्त परादिकों का आशय प्रथम खण्ड में दी हुई स्वतंत्रताओं को रद्द करना है। परन्तु यदि हम सावधानी से प्रत्येक उपखण्ड की परीक्षा करें तो हमें यह विदित होगा कि यह आलोचना न्यायसंगत नहीं है। खण्ड (2) में से 'राजद्रोह' (sedition) शब्द को निकाल दिया गया है और 'प्राधिकारी' (authority) शब्द को हटा दिया गया है। अत: खण्ड (2) में कानून से युक्त वे बातें रह जाती हैं जिनका सम्बन्ध अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि अथवा शिष्टता या शील पर आघात या राज्य के आधार को जर्जर करने वाली बातों से है। कानून की किताब में केवल यही रहेगा।

जैसा कि कल संकेत किया गया था, अमरीका में भी जहां न्यायालयों को परमाधिकार दिया गया है, सर्वोच्च न्यायालय को इस अधिकार को परिसीमित करने के लिये विवश होना पड़ा। हम यह कर रहे हैं कि सर्वोच्च न्यायालय के स्थान में हम स्वयं ही इस अधिकार को परिसीमित कर रहे हैं। वर्तमान रूप में यह परिसीमा जितनी पहले थी उसकी अपेक्षा अब कम विस्तृत हैं। मेरे विचार से सभा को इससे संतोष हो जायेगा।

इस सम्बन्ध में मैं केवल एक शब्द और कहना चाहता हूं। खण्ड (1) (क) में यह कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक को भाषण और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का अधिकार होगा। जैसा कि मैंने अपने एक संशोधन में विचार प्रकट किया है, हमें यहां मुद्रण-स्वातंत्र्य को रखना चाहिये। मैं आशा करता हूं कि डॉ. अम्बेडकर इस खण्ड में मुद्रण-स्वातंत्र्य के संशोधन को प्रस्तुत करेंगे।

खण्ड (3) के सम्बन्ध में मुझे इस बात की खुशी है कि 'युक्तियुक्त' (reasonable) के जोड़ने के पश्चात् वह स्वतंत्रता का और भी अधिक विस्तृत

अधिकार-पत्र हो गया। उसमें यह कहा गया है कि 'इस खण्ड के उपखण्ड (ख) की किसी बात से लोक-व्यवस्था के हित में उक्त खण्ड द्वारा प्रदत्त अधिकारों' के प्रयोग पर 'युक्ति-युक्त' आयन्त्रणों का आरोप करने वाले किसी कानून के प्रवर्तन पर प्रभाव अथवा किसी कानून के बनाने में राज्य के लिये अवरोध न होगा।

इसके अन्तर्गत वर्तमान कानून, जहां तक कि वे ऐसे आयंत्रणों का आरोप करते हैं जो लोक-व्यवस्था अथवा लोक-शील के हित में नहीं हैं, रद्द हो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति इस बात को मानेगा कि लोक-व्यवस्था का प्रबन्ध करना ही होगा। संशोधित रूप में उप-खण्ड अपने पहले रूप से अच्छा है। अब सर्वोच्च न्यायालय यह निर्धारित कर सकता है कि कौन-सी बातें लोक-व्यवस्था के विरुद्ध हैं और कौन नहीं।

खण्ड (4) के सम्बन्ध में मैं यह कहूंगा कि मजदूर लोग अब यह अनुभव करेंगे कि उनको स्वतन्त्रता का अधिकार-पत्र मिल गया। वे अब ऐसे संघ बना सकते हैं जो लोक-व्यवस्था अथवा लोक-शील के हितार्थ युक्तियुक्त आयंत्रणों के अधीन हो। अत: आज मजदूर लोग डॉ. अम्बेडकर को, उन संशोधनों को स्वीकार करने के लिये जिनसे मूल खण्ड में परिवर्तन हो गया है, धन्यवाद देंगे। मूल रूप के अनुसार आप सम्मेलन नहीं कर सकते थे क्योंकि वह जन-साधारण की इच्छाओं के विरुद्ध था। अब आपको यह सिद्ध करना होगा कि किसी सम्मेलन को रोकने का निर्णय लोक-व्यवस्था अथवा लोक-शील के हित की रक्षा के लिये है। मजदूरों के लिये यह स्वतंत्रता का एक महान् अधिकार-पत्र है।

तत्पश्चात् मैं खंड (5) को लेता हूं। यह उपखंड (घ), (ङ) और (च) की विशेषता है। उसमें कहा गया है: "उपखंड (घ), (ङ) और (च) की किसी बात से इत्यादि, इत्यादि" "अथवा अनुसूचित जातियों के हित-रक्षार्थ"। हमने उसमें "युक्तियुक्त" शब्द जोड़ दिया है। यह बहुत ही महत्वपूर्ण है। ऐसे अधिकार जैसे कि समस्त देश में अबाध पर्यटन बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। कुछ लोगों ने इस ओर संकेत किया है कि आजकल ऐसे अनेकों कानून वर्तमान है, उदाहरणस्वरूप पूर्वी पंजाब में, जो वास्तव में बहुत ही बुरे हैं और यह खंड उनमें से अनेकों को रद्द नहीं कर सकेगा।

इसके पश्चात् खंड (6) है जो व्यवसाय करने के सम्बन्ध में है। जो संशोधन स्वीकार कर लिये गये हैं उनके योग से यह खंड भी बहुत अच्छा हो गया है।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

एक बात मैं और कहना चाहता हूं। श्री कामत् अपने संशोधन द्वारा आयुध-धारण करने का अधिकार चाहते है। संसार के अनेकों विधानों में इस अधिकार को मान्य किया गया है। समस्त इतिहास में हमने स्वयं यह चाहा था कि यह हमारा अधिकार हो। मुझे यह ठीक याद है कि महात्मा गांधी ने 1930 में लार्ड इर्विन को आठ बातों के सम्बन्ध में, जिनको वे चाहते थे कि स्वीकार कर ली जायें, जब पत्र लिखा था तो उनमें एक बात यह आयुध-धारण करने के अधिकार की थी। आयुध-धारण करने के इस अधिकार का प्रश्न सन् 1878 का प्रश्न है जब कि गदर के पश्चात् अंग्रेजों ने राष्ट्र को निःशस्त्र कर दिया था। मेरे विचार से स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् हमें कम से कम इस बात की आज्ञा दे देनी चाहिये, क्योंकि केवल सशस्त्र व्यक्ति ही सरकार का पक्ष-समर्थन कर सकता है। मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर इस सम्बन्ध में कुछ न कुछ अवश्य करेंगे।

तत्पश्चात् राजद्रोह के सम्बन्ध में भी मैं कुछ कह दूं। हमारे महान् नेता लोकमान्य तिलक जैसे तथा अन्य नेता धारा 124-(क) के शिकार बने थे। मैं डॉ. अम्बेडकर को इस बात के लिये बधाई देता हूं कि उन्होंने इस शब्द को खण्ड में इस प्रकार से रखा कि उससे खण्ड का रूप प्रकट हो गया।

श्री एच.जे. खांडेकर (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, क्लाज 13 के बारे में मैं कुछ अपने विचार आपके सामने रखने के लिये यहां आया हूं। क्लाज 13 को अगर रास्ते में चलने वाला आदमी भी पढ़े और वह यहां तक पढ़े कि उसके सब-क्लाज 1 के 'जी' तक पहुंच जाये तो वह यह समझने लगेगा कि इस देश के अन्दर स्वराज्य आ गया और हर इन्सान को इसमें फ्रीडम मिल गयी। मगर आगे चल कर सब-क्लाज 2, 3, 4, 5 और 6 पढ़े तो यह समझ लेगा कि इस देश के अन्दर अभी तक स्वराज्य नहीं आया। जो भी सीधे हाथ से सब-क्लाज 1 में दिया गया है वह बांये हाथ से आगे के सब-क्लाज में ले लिया गया है। मैं समझता हूं कि मेरी इस विचारधारा को बहुत से मेम्बरान सपोर्ट करते होंगे। इस क्लाज के अनुसार इस हिन्दुस्तान के नागरिकों को जो अधिकार दिये गये हैं उनमें अगर हम, उप-सभापति जी, सब क्लाज 1 को पढ़ें तो 'ए' में तो यह लिखा है: "फ्रीडम ऑफ स्पीच एण्ड एक्सप्रेशन", जिसके लिये कि आप और इस हाउस के बहुत सारे सदस्य जानते हैं कि 1941 ई. में "फ्रीडम आफ स्पीच और एक्सप्रेशन" के लिये महात्मा गांधी जी के नेतृत्व में हम लोगों ने व्यक्तिगत सत्याग्रह किया था और इस देश के हजारों ही नहीं बल्कि

लाखों लोगों को जेल के अन्दर सड़ना पड़ा था। उस समय हम यह सोच रहे थे कि जब हमारा राज्य आ जायेगा तो इस देश के हर एक नागरिक को "फ्रीडम ऑफ स्पीच और एक्सप्रेशन" मिलेगी। यहां आर्टिकिल 13 में "फ्रीडम ऑफ स्पीच और एक्सप्रेशन" दी गयी है। मगर सब-क्लाज 2 से यह सब बायें हाथ से ले लिया गया है। मैं आपको बताना चाहता हूं कि प्रान्तीय सरकारों ने अभी बहुत से कानून बनाये हैं और वह सब इस आर्टिकिल के अनुसार जारी रहेंगे और आगे चल कर भी इस तरह के कानून बनाने की गुंजाइश इसमें रखी गयी है। कई प्रान्तों में गुण्डा एक्ट, असेंशियल सर्विसेस कानून और पब्लिक सेफ्टी एक्ट बनाये गये हैं और मैं आपको यह कहूं तो आपको ताज्जुब होगा कि इस देश के बड़े-बड़े शहरों में जब से हमारी पापुलर मिनिस्ट्री ने चार्ज लिया है तब से दफा 144 लागू हुई है और आप यह देखेंगे कि बड़े-बड़े शहरों में 5 या 7 आदमी इकट्ठा नहीं हो सकते। वह आपस में बातचीत नहीं कर सकते; वह अपने विचार प्रकट नहीं कर सकते। अगर यही परिस्थिति इस कानून से आगे बढ़ी रही तो जो फ्रीडम हम इस देश के लिये चाहते हैं वह फ्रीडम क्लाज 13 के सब-क्लाज 1 'ए' में जो दी गयी है वह सब-क्लाज 2 से खत्म हो जाती है। इसलिये मैं तो चाहता हूं कि एक-एक सब-क्लाज को आपके सामने लाऊं और उस पर अपने विचार प्रकट करूं और आखिर में आपसे यही कहूं कि इस आर्टिकल को आप फिर ड्राफ्टिंग कमेटी के पास भेज दें ताकि वह इस पर फिर विचार करके इस देश में जिस तरह की चीज की जरूरत है उस तरह की चीज इसमें शामिल करके फिर पेश करे तो फिर हाउस उसे खुशी से पास करे। लेकिन जैसा यह क्लाज इस समय है उस तरह पास हो गया तो सब मतलब समाप्त हो जायगा।

उप-सभापति जी, क्लाज 'बी' में कहा गया है:

ably and without arms, इसका मतलब भी सब-क्लाज 3 से खत्म हो जाता है। इसी तरह 'सी' में कहा गया है: to form associations or unions तो हमको associations or unions को form करने की फ्रीडम तो दी गयी है कि हम एसोसियेशन और यूनियन बनावें और उनके जरिये आन्दोलन करें; मसलन् हम मजदूरों का आन्दोलन शुरू कर सकते हैं और किसी मिल के अन्दर या फैक्टरी के अन्दर मजदूरों की पगार या बोनस की मांग करने के लिये जरूरत पड़े तो वह एक साथ इकट्ठा होकर मिल सकते हैं और सभा कर सकते हैं, लेकिन सभा करने की पाबन्दी का जो कानून है वह लागू होगा और इस प्रकार वह अपना आन्दोलन जो कानून सभा न करने का बना हुआ है और आगे बनेगा

[श्री एच.जे. खांडेकर]

उसके अनुसार नहीं कर सकेंगे। अगर मजूदर अपने बोनस मांगने के लिये आन्दोलन करें तो उन पर वह सब पाबन्दियां लागू होती हैं और सरकार चाहे तो उनको आन्दोलन न करने दे और इकट्ठा न होने दे। तो इसका मतलब क्या है कि ऐसोसियेशन तो स्थापित कर दिया जाये मगर सब-क्लाज 4 के अनुसार वह सब अधिकार वापस ले लिया जाता है और इसलिये इस सेक्शन से न तो मजदूरों की भलाई है और न आम जनता की भलाई है।

आगे चल कर to move freely throughout the territory of India, यह इसका 'डी' सेक्शन है। उसके अनुसार हर नागरिक को किसी भी प्रान्त या किसी भी गांव में जाने का अधिकार दिया गया है और इसके साथ ही साथ 'डी' का अधिकार भी सब-क्लाज 5 के अनुसार छीन लिया गया है। मैं आपको एक उदाहरण दूंगा। बड़े ताज्जुब की बात है कि इस देश में एक कानून 'क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट' है जिसके अनुसार एक आदमी जिस दिन जन्मता है उसी दिन से उसको गुनाहगार सिद्ध किया जाता है। ऐसी भी बदकिस्मत कौम इस देश के अन्दर मौजूद है जो इस कानून के अनुसार जो अधिकार हर इन्सान को दिया गया है कि वह 'फ्रीली मूव' कर सके इण्डिया की किसी भी टैरिटरी में, वह अधिकार उसको नहीं मिलेगा। उप-सभापति जी, आपको यह मालूम होगा कि क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट के मुताबिक यह जितने भी जरायम पेशा लोग हैं वह उस एक्ट के अनुसार अगर हिन्दुस्तान के अन्दर कहीं जाना चाहें तो नहीं जा सकते। उनको वह स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। मैं आपको बताऊं कि हमारे यहां मांगगारोडी के नाम की एक जाति है। अगर खापा नाम के गांव से उन्हें सांवनेर नाम के गांव को जाना होता है तो पुलिस उनके पीछे जाती है और सांवनेर तक पहुंचा कर आती है। इसी तरह अगर वह सांवनेर से काटोल जाते हैं तो सांवनेर का पुलिस वाला उनके पीछे जाकर काटोल के पुलिस वाले के यहां सुपुर्द करके आवेगा। उनके लिये कोई फ्री मूवमेण्ट नहीं है। और अगर यह मूवमेण्ट की फ्रीडम 'डी' के मुताबिक दी जाती है तो वह सब-क्लाज 5 से ले ली जाती है। तो इन क्रिमिनल ट्राइब्स को जो कि हिन्दुस्तान के निवासी हैं उनको वह फ्रीडम नहीं दी जा रही है जो कि उन्हें दी जानी चाहिये। वरना बड़ा अन्याय होगा।

इसी तरह आगे चल कर आगे है– to aquire, hold and dispose of property यह जो फ्रीडम दी गयी है उसके बारे में मेरे एक मित्र प्रोफेसर यशवन्तरावजी ने बताया कि एक बदकिस्मत कौम इस देश के अन्दर पंजाब के

अन्दर है और वह एक शेड्यूल्ड कास्ट है। पंजाब में जो 'लैण्ड एलीनेशन एक्ट' है उसके अनुसार पंजाब के हरिजन जमीन नहीं खरीद सकते और आपने जो यहां यह अधिकार हरएक नागरिक को जमीन लेने का दिया है उसके साथ ही साथ आपने दूसरे सब-क्लाज में उसे छीन लिया है जिसके अनुसार वह जो 'लैण्ड एलीनेशन एक्ट' पंजाब में है वह वैसे ही कायम रहेगा। जो अधिकार हरिजन को इस कान्स्टीट्यूशन के मुताबिक दूसरे नागरिक के समान मिलना चाहिये वह सामन अधिकार पंजाब के 'लैण्ड एलीनेशन एक्ट' के अनुसार पंजाब के रहने वाले हरिजन को नहीं मिल सकता।

पं. ठाकुरदास भार्गव (पूर्वी पंजाब : जनरल): इस सेक्शन से अब जरूर मिलेगा।

श्री एच.जे. खांडेकर: किस सेक्शन से?

पं. ठाकुरदास भार्गव: इसी सेक्शन 13 से अब मिलेगा।

श्री एच.जे. खांडेकर: यहां तो इस प्रकार कहीं नहीं लिखा है। अगर यह ऐसे का ऐसा ही पास हुआ तो पंजाब के रहने वाले हरिजनों को जो अधिकार मिलना चाहिये वह नहीं मिलेगा।

***उपाध्यक्ष:** क्या मैं आप लोगों को यह संकेत करूं कि परस्पर वार्तालाप करने से यह उत्तम होगा कि आप लोग अध्यक्ष को सम्बोधन करें?

श्री एच. जे. खांडेकर: बहुत अच्छा, श्रीमान्।

*[अब इस सब-क्लाज 1 का जो 'जी' है "to practise profession of any business" और इसके जो अधिकार हैं, वह सब-क्लाज 6 से छिन गये हैं और इससे हम लोगों के ऊपर क्या आपत्ति आने वाली है यह उप-सभापति जी, मैं आपके सामने रखना चाहता हूं। इस देश के अन्दर सबसे बदकिस्मत कौम है भंगी, मेहतर की कौम और उस मेहतर की कौम को चाहे आप कितने अधिकार दे दें और उनको भी कहें कि तुम्हारे लिये अधिकार हैं। लेकिन मेहतरों के लिये आज तक किसी ने कोई अधिकार नहीं दिया और उस गरीब कौम ने कभी अधिकारों का उपभोग नहीं किया, उस कम्युनिटी के बारे में यह कहूं कि 'to practise any profession, trade, or business' अगर एक मेहतर जो आज म्युनिस्पैलिटी का काम करता है। मुझे दूसरे प्रान्तों की बात नहीं मालूम मगर अपने प्रान्त की बात मुझे अच्छी तरह मालूम है। अगर एक मेहतर यह चाहे

[श्री एच.जे. खांडेकर]

कि वह अपना धन्धा छोड़ दे तो कानून के मुताबिक उसको डिप्टी कमिश्नर को एक नोटिस इस बात का देना पड़ता है और अगर वह उसको (discharge) कर दे, छोड़ दे तो वह मेहतर नौकरी छोड़ सकता है। मैं तो इस ख्याल का आदमी हूं कि मेहतर की कौम से ही लोग नफरत करते हैं। अगर उसका काम ही लोगों की नजरों में नफरत है तो मैं सारे हिन्दुस्तान के मेहतरों को बार-बार यही कहता आया हूं और उप-सभापति जी, आपके जरिये भी मैं मेहतरों को कहना चाहता हूं कि जब लोग उनको और उनके काम को ही गन्दा समझते है और उनको अछूत समझते हैं तो उनको उस काम को जितनी जल्दी हो सके छोड़ देना चाहिये और दूसरे लोग जिस प्रकार काम करते हैं उनको भी वही काम करने चाहियें। मेरे कहने के मुताबिक मेहतरों का काम छोड़ना चाहते हैं और इस कानून के जरियें यह जो सब-क्लाज 1 'जी' में अगर उनको यह अधिकार दिया गया है कि वे भी कोई भी धन्धा कर सकते हैं। अगर वे, सारे देश के मेहतर यह धन्धा छोड़ दें तो वह जो सब-क्लाज 6 है कि 'in the interest of public' और जैसा डॉक्टर अम्बेडकर ने अमेण्डमेण्ट रखा है उस 'पब्लिक इन्टरेस्ट' में उनका काम आ जायेगा। अगर सारे मेहतर या तो दिल्ली शहर के या बम्बई शहर के या कलकत्ते के किसी भी शहर के सारे के सारे मेहतर पाखाना साफ करने का, सड़कें साफ करने का अपना काम बन्द कर दें तो यह 'public interest' के खिलाफ बात हो जायेगी और उस कानून के मुताबिक और 'असेंशियल सर्विसेस एक्ट' के अनुसार सारे मेहतरों के ऊपर पाबन्दी लगायी जायेगी कि उनको यह काम करना ही होगा। तो आप कैसे समझते हैं कि इस क्लाज के अनुसार सारे मनुष्यों को समस्त अधिकार दिये गये हैं। इसलिये जो मुसीबतें हमारे सामने हैं, हमारे काश्तकारों के सामने, हमारे मजदूरों के सामने, हमारे मेहतरों के सामने इस क्लाज से मुसीबत आने वाली है। इसलिये मेरा यह कहना है और हाउस मेरी स्पीच सुनने के बाद इस बात को मान लेगा कि यह जो क्लाज है इसको फिर 'Drafting Committee' के सामने भेजा जाये और उसमें अदल-बदल करके फिर से इस हाउस के सामने रखा जाये। यह मेरा सुझाव है और इन शब्दों के साथ मैं अपना भाषण समाप्त करता हूं।]

श्री अलगूराय शास्त्री (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, उपाध्यक्ष महोदय, धारा 13 में मौलिक स्वतंत्रता के सभी महत्वपूर्ण अंगों का उल्लेख है। इस दृष्टि से यह धारा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कुछ छोटे-छोटे संशोधनों के साथ यह स्वीकार होने जा रही है। इस पर बहुत मित्रों ने आक्षेप किया है कि इस धारा में जो मौलिक

अधिकार दिये गये हैं उनको दूसरे प्रतिबन्धनों से छीन लिया गया है। मैं समझता हूं कि स्वतंत्रता के साथ उत्तरदायित्व आवश्यक है। फिर जो मित्र यह आक्षेप करते हैं कि इस धारा में दिये गये अधिकारों को जो दूसरे वाक्य खण्ड इस धारा के अन्तर्गत 2, 3, 4, 5, 6 में आये हैं उनसे हटा लिया गया है। उन्होंने यह विचार नहीं किया है कि उन प्रतिबन्धनों में यह अधिकार आगे आने वाले जिन धारा सभाओं को दिया गया है उन धारा सभाओं को कौन चुनेगा, वह धारा सभा किस से बनी हुई होंगी। जनता के प्रतिनिधि धारा सभा में बैठेंगे और वह चाहेंगे जो प्रतिबन्ध वह चाहेंगे, प्रतिबन्धन लगायेंगे। ऐसे प्रतिबन्धन जनता के हित में ही होंगे। जो स्वास्थ्य की दृष्टि से आवश्यक होगा, जनशान्ति की रक्षा की दृष्टि से अनिवार्य होगा, जन-रक्षा की दृष्टि से वांछित होगा, वही प्रतिबन्ध लगाया जायेगा, जनता की स्वतंत्रता को कुचलने के लिये नहीं।

स्वतंत्रता एक बड़ी भारी कला है। इससे बड़ी कला जितनी कि नाचने और गानें की कलायें है। नाचना और गाना जो जानता है वह अपनी ध्वनि पर अधिकार रखता है, अंग-भंगि और पाद प्रक्षेप पर प्रतिबन्ध और नियंत्रण रखता है। नाचने और गाने के कुछ बने हुये निश्चित नियमों से बंध कर उसे चलना होता है; वह उच्छृंखलता के साथ बेसुर, बेताल, नाच-गा नहीं सकता। उस पर नियमों का पूरा नियंत्रण रहता है। हमको पूरी स्वतंत्रता दी जा रही है तो पूरी स्वतंत्रता के कदापि अर्थ यह नहीं है कि हम किसी प्रतिबन्ध को न मानें। भाषण-स्वतंत्रता के ये माने नहीं हैं कि हमारे जी में जो आये वह बकने लगें। किसी कायदे और रूल्स का अनुसरण न करें। धारा-सभाओं में, सरकारी लेजिस्लेचरों में हमको कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है, कायदे कानून मानने पड़ते हैं। हम स्वतंत्र जनता के प्रतिनिधि की हैसियत से यहां पर बैठे हैं किन्तु हमारे ऊपर सैकड़ों प्रतिबन्ध हैं, अनेक प्रकार के बन्धन हमारे ऊपर हैं। स्वतंत्रता के साथ प्रतिबन्ध होना आवश्यक है, "कविहि अर्थ आखर बल सांचा, करतल ताल गतिहिं नट नाचा"। नट नाचता है तो एक नियत ताल पर, बेताल नहीं; उसकी गति ताल के अनुरूप होती है।

एक स्वतंत्र राष्ट्र, एक स्वतंत्र जाति को स्वतंत्रता मिलती है तो वह जाति अपने ऊपर उत्तरदायित्व धारण करती है। इस कारण हम यह नहीं कह सकते कि जो प्रतिबन्ध लगाये गये हैं वह हमारी उन्नति में बाधक होंगे। मेरे एक मित्र ने भंगी की बात कही है। मैं सन् 24 से इस जाति में काम करता आ रहा हूं। मुझे 24 वर्ष का व्यक्तिगत अनुभव है। निस्संदेह बेचारे भंगियों और दूसरे अछूत कहलाने

[श्री अलगूराय शास्त्री]

वाले भाइयों को अपार कष्ट है उनकी दशा शोचनीय है, किन्तु यहां इस धारा 13 के अन्दर जो प्रतिबन्ध लगे हैं उनका अर्थ यह नहीं है कि भंगियों को उनका वही वर्तमान पेशा करना पड़ेगा। किसी को इस धारा से कोई पेशा करने के लिये विवश नहीं किया जायेगा। इस धारा से तो व्यक्ति को कोई भी पेशा करने की सर्वथा स्वतंत्रता रहेगी, विवशता नहीं। मैं तो समझता हूं कि "एफ" और 'जी' में जो स्वतंत्रता दी गई है उसका स्पष्टीकरण करना आवश्यक है। "एफ" में प्रत्येक व्यक्ति को सम्पत्ति प्राप्त करने, सम्पत्ति को रखने और उसके उपभोग करने के अधिकार का उल्लेख है। तथा अंग "जी" में व्यवसाय, उद्योग एवं जीविकोपार्जन के मनमाने साधनों को काम में लाने की स्वतंत्रता दी गयी है। यह सच है कि खण्ड 5 तथा 6 में इन स्वतंत्रताओं को नियमित करने का अधिकार सरकार को दिया गया है किन्तु इस सम्बन्ध में थोड़ा स्पष्टीकरण करना आवश्यक है। अनुच्छेद 13 के ये दोनों अंश "एफ" और "जी" बहुत व्यापक हैं। अत्यन्त अनियंत्रित स्वतंत्रता देते हैं। इतनी स्वतंत्रता संकट से मुक्त नहीं है। आज हमारे समाज में वेश्यावृत्ति चलती है। क्या आगे भी यह इसी प्रकार चल सकेगी? कदापि नहीं चलनी चाहिये। वेश्यावृत्ति के लिये यह व्यवस्था होनी चाहिये कि यह रुके और उसका स्थान अधिक उपयोगी साधन ले सकें। इस पर प्रतिबन्ध होना आवश्यक है।

आज हमारे समाज में मादकद्रव्य बेच कर जीविकोपार्जन की स्वतंत्रता है। अभी डाइरेक्टिव प्रिंसिपल्ज़ में हमने मादकद्रव्य-निषेध के लिये व्यवस्था की है, किन्तु मौलिक अधिकारों में अनियंत्रित जीविकोपार्जन का अधिकार दे दिया गया है। दोनों परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। व्यवस्था यह होनी चाहिये कि औषधि के लिये छोड़ कर मादकद्रव्य विक्रय करके कोई जीविका न उपार्जित कर सके।

आज हमारे समाज में भिक्षावृत्ति चलती है। क्या यह इसी तरह चलती रहेगी? इसे सुन्दर ढंग से रोकने की व्यवस्था होनी चाहिये।

आज हमको स्वतंत्रता मिल गई है। हमको इस तरह के कार्य नहीं करने चाहियें जिससे कि हम इसकी रक्षा न कर सकें। हमको अच्छे नागरिक बनना है। हमें यह भी देखना है कि हमारी स्वतंत्रता का दुरुपयोग न किया जाये। अब तक हमारे ऊपर विदेशी शासन था। विमाता (सौतेली माता) की तरह उसका भारत की प्रजा के प्रति व्यवहार था। इंग्लिस्तान में एक दवा में भी उचित मात्रा से अधिक

मादकद्रव्य नहीं मिलाया जा सकता, किन्तु यहां बाजारों में खुले तौर पर ठर्रा शराब की बोतलें बिकती रही हैं। हमारी माता स्वतंत्रता अपनी सन्तान को ऐसी अवांछनीय स्वतंत्रता कदापि नहीं दे सकती, उन्हें उन्मार्ग गामी नहीं बनने दे सकती।

प्रतिबन्ध तो ऊंची नागरिकता में होते ही हैं "सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्" बोलने की स्वतंत्रता है, सत्य बोलने की स्वतंत्रता है परन्तु अप्रिय सत्य की नहीं यह प्रतिबन्ध है, अच्छे नागरिक को यह प्रतिबन्ध मानना पड़ता है। इन कारणों से मैं, जो संशोधन अभी अम्बेडकर साहब ने पेश किये हैं और जिनका जिक्र आ चुका है, उनके साथ इस 13वीं धारा का अभिनन्दन करता हूं।

मैं एक बात और कहना चाहता हूं कि मुझे लगता है कि "एफ" और "जी" में जो अधिकार दिये गये हैं वह कदाचित् अधिक हैं।

मैंने जीविकोपार्जन के सम्बन्ध में कुछ कहा है। लेकिन अब धन-सम्पत्ति संग्रह के बारे में एक शब्द कह कर बैठ जाना चाहता हूं। जिस प्रकार की स्वतंत्रता दी जा रही है उसके अनुसार पूंजीपति और सामन्तशाहों को पूरा अधिकार है कि वह सम्पत्ति-उपार्जन करें और उसका उपभोग करें। उसका उपभोग और उपार्जन अभी जिस तरह हो रहा है उसमें श्रमिक और मजदूर कमाता है और वह खाते हैं। "बैल कमाता है और घोड़ा खाता है" यह कहावत चरितार्थ हो रही है। इस तरह की बात नहीं होनी चाहिये। तो इसका इंटरप्रिटेशन आगे चल कर इस तरह हो जाना चाहिये कि आज जो व्यक्तिगत सम्पत्तिवाद का रूप है उसको समाजगत सम्पत्तिवाद का रूप दिया जा सके। सारे उत्पादन के साधन और उत्पादित वस्तु के वितरण का अधिकार एवं नियंत्रण समाज के हाथ हो, व्यक्तियों के हाथ में न हो। "Unless the individual ownership yields place to collective ownership—social ownership—there cannot be real Swarajya."

तो इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये आवश्यक है कि इस तरह से इन प्रतिबन्धों की व्याख्या की जाये–इनको इंटरप्रेट किया जाये। इन शब्दों के साथ मैं इस धारा का समर्थन करता हूं।

***श्री अमिय कुमार घोष** (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, आज हम इस विधान के एक बड़े ही महत्वपूर्ण खण्ड पर विचार कर रहे हैं। हम नागरिकों की स्वतंत्रता पर विचार कर रहे हैं। अर्थात् भारत निवासियों को इस विधान के

[श्री अमिय कुमार घोष]

अन्तर्गत क्या अधिकार होंगे। सम्पूर्ण खण्ड के पढ़ने पर मुझे यह प्रतीत होता है कि इस अनुच्छेद के उप-खण्ड (1) में जो अधिकार मान्य किये गये हैं उनको उत्तरवर्ती परादिकों द्वारा बहुत कुछ निराकृत कर दिया गया है। विधान में दो मुख्य बातें होती हैं और वे बातें ये हैं कि हमारे अधिकार क्या हैं और हमारी सरकार किस प्रकार की होगी। विधान में यही दो मुख्य विषय होते हैं और अन्य विषय उनसे ही निकलते हैं और इसलिये प्रत्येक व्यक्ति यह आशा करता है कि जहां तक मनुष्यों के अधिकारों का सम्बन्ध हैं उनको स्पष्ट तथा सीधी-सादी भाषा में अभिव्यक्त कर दिया जाये जिससे कि एक सामान्य व्यक्ति जिस समय इस विधान को पढ़े यह ठीक-ठीक समझ जाये कि उसके क्या-क्या अधिकार हैं और उसके अधिकारों पर क्या-क्या नियंत्रण हैं। मेरे कहने का यह आशय नहीं है कि सद्यस्कृत्य स्थिति अथवा गम्भीर परिस्थितियों में स्वतन्त्रता को किसी सीमा तक आयंत्रित करने की आवश्यकता नहीं है। मैं अधिकारों के आयंत्रणों और संतुलन में विश्वास करता हूं परन्तु इसके साथ-साथ मैं यह कहूंगा कि वे आयंत्रण बिल्कुल ठीक और स्पष्ट हों और असंदिग्ध भाषा में उनको रखा जाये तथा निर्णय के लिये न्यायालयों पर नहीं छोड़ा जाये।

श्रीमान्, आप देखेंगे कि इन (2), (3), (4), (5) और (6) समस्त उप-खण्डों में हमने 'जन सामान्य के हित', 'जन सामान्य हित, 'लोक-व्यवस्था' और 'सम्पत्ति' शब्दों का बिना उनकी व्याख्या किये हुये प्रयोग किया है और मेरे विचार से सर्वोच्च न्यायालय को यह बताने के लिये कि इन शब्दों का वास्तविक अर्थ क्या है, सैकड़ों वर्ष लगेंगे। उपखण्डों में ऐसे शब्द रख कर केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान-मण्डलों को ऐसे कानून बनाने का व्यापक अधिकार दे दिया है जिनके द्वारा वे उस स्वतन्त्रता पर आयंत्रण लगा सकते हैं जो इस अनुच्छेद के उपखण्ड (1) द्वारा लोगों को दी गई है। मैं इस अनुच्छेद की आलोचना में नहीं पड़ना चाहता हूं, मैं तो केवल यही कहना चाहता हूं कि यह समस्त खण्ड बड़ा ही निराशाजनक है।

मैं माननीय डॉक्टर बी.आर. अम्बेडकर का ध्यान विशेषतया उप-खण्ड (5) की ओर आकर्षित करूंगा। जो अधिकार खण्ड (1) के (घ), (ङ) और (च) उप-खण्डों द्वारा मान्य किये गये हैं उनको इस उप-खण्ड (5) द्वारा लगभग अमान्य कर दिया है। इसके कारण निवास स्थान और सम्पत्ति के अवापन तथा यापन सम्बन्धी विषयों की ठीक स्थिति के सम्बन्ध में अनेकों व्यक्तियों के मन

में गम्भीर चिन्ता उत्पन्न हो गई है। (ङ) और (च) के सम्बन्ध में खण्ड (5) के ठीक-ठीक अर्थ के लिये और भी स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। और मैं यह भी नहीं समझ पाता हूं कि इस खण्ड में "किसी आदिवासी जाति के हित-रक्षार्थ" शब्द क्यों रखे गये हैं। इनका ठीक-ठीक अर्थ क्या है, यह समझने में मैं असमर्थ हूं। क्या इसका अर्थ 'वनजाति-क्षेत्र' से है अथवा यह कि जहां कहीं कोई आदिवासी जाति रहती है, उनकी संख्या का ध्यान न रखते हुये, विधान-मण्डल उनके हितों का संरक्षण करते हुये कानून बना सकते हैं, उदाहरण के रूप में यदि दिल्ली में 15 आदिवासी रहते हैं तो क्या केन्द्रीय विधान-मण्डल कोई ऐसा कानून बना सकता है जिसके द्वारा वह इन पन्द्रह या सोलह आदिवासियों के हितार्थ अन्य व्यक्तियों के अधिकारों को आयंत्रित कर सके? यह बात तो मैं समझ सकता था कि वनजाति-क्षेत्र के सम्बन्ध में यह बात होती। परन्तु कोई भी व्यक्ति यह नहीं समझ सकता है कि जहां कहीं भी थोड़े से आदिवासी हों वहां का विधान-मण्डल कोई ऐसा कानून बना सके जिसके द्वारा वह उन थोड़े से व्यक्तियों की रक्षार्थ अन्य सब लोगों के अधिकार आयंत्रित कर सके।

श्रीमान्, मुझे यह प्रतीत होता है कि यह स्थिति संदिग्ध और भद्दी है और इसको स्पष्ट करना चाहिये। मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि खण्ड (घ) को उप-खण्ड (5) के साथ क्यों मिला दिया गया है। मेरा व्यक्तिगत विचार यह है कि इस उपखण्ड द्वारा अबाध पर्यटन आयंत्रित कर दिया गया है। नागरिकों को पर्यटन का स्वतंत्र अधिकार होना चाहिये। केवल प्रशासन अथवा राजनैतिक आधार पर विवेकपूर्वक ऐसे कानून के निर्माण करने का अधिकार केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय विधान-मण्डलों को दिया जा सकता है जिनके द्वारा वे लोगों के पर्यटन को आयंत्रित कर सकते हैं और इस अधिकार को बहुत कम तथा विशेष परिस्थिति में काम में लाना चाहिये। स्वतन्त्रता के प्रत्येक विषय पर जन सामान्य के हित में आयंत्रणों का आरोप किया गया है। परन्तु वह हित क्या है यह हम नहीं जानते और न कहीं वह बताया ही गया है। विभिन्न राज्यों और केन्द्र में ऐसे शब्दों की व्याख्या कई प्रकार से की जा सकती है और इसके कारण परस्पर पृथक् तथा विरोधी कानून बन सकते हैं। श्रीमान्, इससे बड़ी गड़बड़ी होगी। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि यदि इस अनुच्छेद का अध्ययन किया जाये और इस पर विचार किया जाये तो उससे निराशा ही होगी। थोड़ा और अधिक प्रयत्न करने से तथा इस ओर कुछ रुचि रखने से इस अनुच्छेद की रचना ऐसी सुन्दर भाषा में हो जाती कि समस्त विधान में यह एक आदर्श अनुच्छेद होता।

***उपाध्यक्षः** श्री टी.टी. कृष्णमाचारी!

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल) क्या मैं यह जान सकता हूं, श्रीमान्, कि क्या आप वक्ताओं को चिटों के आधार पर बुला रहे हैं?

***उपाध्यक्षः** मैं अपने कार्य-संचालन के सम्बन्ध में आपको कोई भी सूचना देने के लिये तैयार नहीं हूं।

***श्री गोपाल नारायण** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): इसका अर्थ यह है कि हमें बार-बार खड़े होने की आवश्यकता नहीं है। श्रीमान्, क्या हमें बारम्बार खड़ा होना है अथवा चिटें भेजनी हैं?

***उपाध्यक्षः** यह तो आपके हाथ में है। आप दोनों काम कर सकते हैं; आप चिट भी भेज सकते है और खड़े भी हो सकते हैं अथवा आप दोनों कामों में से एक भी न करें।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, जैसा कि पूर्व-वक्ता ने कहा है, कदाचित् यह अनुच्छेद इस भाग में बड़ा ही महत्वपूर्ण है और यह वह अनुच्छेद है जो उन अधिकारों को क्रमबद्ध करता है, जिनको पाने के लिये हमने भारत में अपनी स्वतंत्रता-प्राप्ति-हेतु सारे कष्ट सहे। श्रीमान्, वास्तव में उस विधि के अनुसार राज्य इस विशेष अनुच्छेद में गिनाये हुये अधिकारों के प्रयोग करने का हक लोगों को दे रहा है कि वे यह प्रतीत कर सके कि स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये उन्होंने जो कार्य किये और जो त्याग किये वे वास्तव में उचित थे।

श्रीमान्, न तो मैं यह कहता हूं कि इस अनुच्छेद की रचना ठीक है और न मैं यह मानता हूं कि इस अनुच्छेद के भागों पर (2), (3), (4), (5), और (6) खण्डों में प्रावहित वर्जनों से उस स्वतंत्रता तथा अधिकार में कमी नहीं होती है जो खण्ड (1) में व्यक्तियों के लिये स्वीकृत किये गये हैं। परन्तु राजनीति का विद्यार्थी होने के नाते मुझे यह मानना पड़ेगा कि कोई अधिकार निरपेक्ष तो हो ही नहीं सकता और प्रत्येक अधिकार को विशेष परिस्थितियों में किसी न किसी विधि द्वारा संकुचित करना ही पड़ेगा क्योंकि ऐसा हो सकता है कि किसी अधिकार का पूर्णतः उसी सीमा तक प्रयोग नहीं किया जाये जो उस अधिकार के प्रतिपादन करने वाले शब्दों से प्रकट होती है। यह तो केवल दो कट्टर विचारधाराओं में परस्पर समझौते का विषय है। हाल ही में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के कारण यह हो सकता है कि हम उन समस्त अधिकारों को, जिनका प्रयोग व्यक्ति द्वारा हो सकता है, निरपेक्ष रूप में चाहते हैं। यह एक दृष्टिकोण हुआ। दूसरा दृष्टिकोण

यह है कि स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् जिस राज्य की सत्ता स्थापित की गई है वह शैशव में है और उसे अभी अनेकों प्रकार के कष्ट सहने हैं और इस बात को सुनिश्चित करने के लिये, कि राज्य निर्विघ्न होकर कार्य करे, जो कुछ हम कर सकते हैं उसका आश्वासन हमें देना चाहिये चाहे उसमें इस अनुच्छेद द्वारा प्रदत्त अधिकारों का न्यूनन ही क्यों न हो जाये। यद्यपि मुझे कभी-कभी किसी विशेष अवसर पर मसौदा-समिति के सामान्य कार्य की तीव्र आलोचना करनी पड़ी है, पर इसमें शक नहीं कि मसौदा-समिति ने इस बात में सुन्दर मध्यम मार्ग ग्रहण किया है कि उसने इस अनुच्छेद में उन अधिकारों की उचित क्रमबद्ध व्यवस्था की है जो व्यक्तियों के लिये आवश्यक समझे गये हैं और इसके साथ-साथ उसने उन अधिकारों पर ऐसे प्रतिबन्ध लगा दिये हैं जिनसे यह आश्वासन हो जाये कि राज्य और विधान, जिनके निर्माण करने का आज हम प्रयत्न कर रहे हैं, अबाध रूप में फलें-फूलेंगे।

श्रीमान्, भाषा का विषय सदैव बड़ा ही जटिल रहा है। जिन भावों का प्रतिपादन भाषा मुझे कराती है, सम्भव है वह अन्य व्यक्ति को उन्हीं भावों का प्रतिपादन न करा सके और ऐसा ही भाव मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने प्रकट किया है कि चूंकि हम एक ऐसी भाषा में विधान-निर्माण कर रहे हैं जो हमारे लिये विदेशी है उसके ठीक-ठीक अर्थ को हम नहीं समझ सकते। क्या हमें अपनी किसी भाषा में विधान-निर्माण करना चाहिये? इससे तो और भी बड़ी कठिनाई हो जायेगी, क्योंकि एक वर्ग के लोगों की भाषा वही नहीं है जो दूसरे वर्ग की है। इसके अतिरिक्त अभी हमारी भाषा में यथार्थ चिन्तन करने में इतनी उन्नति नहीं हुई है कि हम अपने वैधानिक प्रयोजनों के लिये उसे ग्रहण कर सकें। यह सत्य है कि यहां क्रमबद्ध किये गये इन विशेष प्रतिबन्धों की व्याख्या के लिये हमें सर्वोच्च न्यायालय पर निर्भर होना पड़ेगा या भविष्य में कुछ ऐसे प्राधिकारी बनाने पड़ेंगे जो यह निश्चित करें कि लोगों के अधिकारों को कम तो नहीं किया जा रहा है।

जिस परिस्थिति में हम हैं उसके सम्बन्ध में आज बोलते हुये हम केवल यही विचार प्रस्तुत कर सकते हैं कि राज्य की दृढ़ता को कायम रखने के लिये उन अधिकारों को कम किया जायेगा। जिस राज्य की अब स्थापना की गई है उस पर उसकी स्थापना के पश्चात् ही प्रथम 18 माह में अनेकों कष्ट पड़े हैं, और सभा का प्रत्येक सदस्य इस बात से परिचित है। केवल शरणार्थी समस्या को हल करने के लिये ही नहीं, अथवा न इस बात के ही लिये कि देश में ऐसी अनेकों शक्तियां हैं जो इस राज्य की वर्तमान रूप में उन्नति नहीं चाहती हैं, बल्कि उन

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

अनेकों आर्थिक कठिनाइयों के लिये, जो आज देश के सन्मुख हैं, सरकार को विशेष अधिकारों की आवश्यकता है। समस्या यह है कि क्या हम अपना विधान उन प्रतिबन्धों के साथ बना रहे हैं जो आज वर्तमान वस्तुस्थिति के अनुसार आवश्यक हैं; अथवा हमें उस काल का चिन्तन करना है जब वातावरण शान्त हो जायेगा और जब इन अधिकारों का प्रयोग करना राज्य के लिये आवश्यक न होगा। मेरा फिर यही विचार होता है कि इस विषय पर भी मसौदा-समिति तथा मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने सुन्दर मध्यम मार्ग को पसन्द किया है।

बैठने से पूर्व एक विषय और है जिस पर मैं जोर देना चाहूंगा। इस सभा में यद्यपि हम में से अधिकतर लोग एक ही दल के हैं, फिर भी आर्थिक विषयों पर हमारे विचार भिन्न-भिन्न हैं। इस खास बात में हम सब साथ थे कि अंग्रेज यहां से चले जायें; हमारी सबकी यही इच्छा है कि हमारा विधान स्थायी हो और जन साधारण को जिस बात की बहुत आवश्यकता है और जिसे वह पूर्व शासन व्यवस्था द्वारा प्राप्त नहीं कर सका उसे प्राप्त कराने का उसे आश्वासन दे। परन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये, किस विधि को ग्रहण किया जाये, इन बातों में हमारे विचार बहुत ही भिन्न-भिन्न हैं और इतने भिन्न हैं कि वे परस्पर विरोधी हैं। यह देख कर मैं खुश हूं कि मौलिक अधिकारों को क्रमबद्ध करते हुये इस विशेष अनुच्छेद में मसौदा-समिति ने उन आर्थिक उलझनों को न रखना पसन्द किया जो कि अन्य विधानों में रखी गई हैं। मेरे विचार से यह बड़ी बुद्धिमानी का कार्य हुआ है। मैं जानता हूं कि इस सभा में मेरे एक मित्र ने अनुच्छेद 13 के एक विशेष उपखण्ड (च) पर आपत्ति की है जो सम्पत्ति के अवापन, धारण और यापन से सम्बन्धित है। मैं इनको तथा अन्य उन लोगों को जिनके विचार भी उन्हीं जैसे हैं, यह आश्वासन देना चाहता हूं कि इसका वास्तविक अर्थ यह नहीं है कि यह निजी सम्पत्ति के सम्बन्ध में कोई ऐसा बड़ा अधिकार है; बल्कि किसी पूर्णतया समाजवादी राज्य-व्यवस्था में कोई व्यक्ति जिस अधिकार की इच्छा करेगा उससे यह किसी प्रकार भी अधिक नहीं है। जो कुछ किसी व्यक्ति के पास है, जो कुछ उसके जीवन के लिये नितान्त आवश्यक है, वह घर जिसमें वह रहता है उसके अधिकार में हो; वह चल सम्पत्ति जो उसके पास होनी चाहिये, वे वस्तुयें जो उसे खरीदनी हैं उसको प्राप्त हों। ये ऐसे अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति के लिये उचित हैं और जिनको मेरे विचार से कोई भी समाजवादी राज्य-व्यवस्था—यदि वह साम्यवादी नहीं है तो—स्वीकार करेगी।

अमरीका के संविधान में सन्निहित अधिकार-पत्र द्वारा अथवा उसी संविधान के चौदहवें संशोधन द्वारा जो अधिकार मान्य किये गये हैं, उन परिगणित अधिकारों का जो आर्थिक महत्त्व है वैसा कोई महत्त्व इस हमारे संविधान में दिये गये अधिकारों का नहीं है और मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि इस संविधान की यह एक विशेष बात हैं। यद्यपि यह ठीक है कि हमारे देश में अभी तक निहित हित मौजूद हैं और उनका प्रभाव भी काफी है, फिर भी जहां तक हमसे बन पड़ा है हमने यही चाहा है कि इन आर्थिक परिस्थितियों को हम वह महत्त्व न दें जो कि उन्हें अमरीका के संविधान में विशेष रूप से दिया गया है और मुझे आशा है कि मेरे वे माननीय मित्र, जिन्होंने अभी इस अनुच्छेद के एक विशेष खण्ड, अर्थात् खण्ड (च) के बारे में आपत्ति उठाई थी, यह अब समझ गये होंगे कि जहां तक सम्पत्ति-अधिकार का सम्बन्ध है इस खण्ड को कोई विशेष महत्त्व नहीं है और यह इसीलिये रख दिया गया है क्योंकि इस प्रकार के अधिकारों की परिगणना में इस अधिकार की गणना करा देना भी लोगों के हृदय को प्रिय लगता है।

श्रीमान्, भविष्य कैसा होगा इस बारे में हम में से किसी को भी पूरा ज्ञान नहीं है, किन्तु इतना हम सब जानते हैं, कम से कम हम में से बहुतों को तो यह विश्वास है कि भविष्य सुन्दर होगा और भविष्य में राज्य प्रगतिशील होगा और यह भविष्य ऐसा होगा जिसमें राज्य लोगों के आर्थिक जीवन में अधिकाधिक मात्रा में हस्तक्षेप करेगा और ऐसी बात इसलिये न करेगा कि वह व्यक्तियों के अधिकारों को संकुचित करना चाहता है, वरन् इसलिये करेगा कि व्यक्तियों का जीवन सुन्दर हो। ऐसे राज्य की मैं कल्पना करता हूं—एक ऐसा राज्य जो निश्चेष्ट न रहे बल्कि सचेष्ट हो और इस देश में लोगों की दशा उन्नत करने के निमित्त काम करे। मेरी यह धारणा है और यह सुविख्यात तथ्य है कि किसी भी विधान में जिसका निर्माण किया जाता है उसमें विगत राजनैतिक विचारों का ऐसा समन्वय होना चाहिये कि उससे नई उन्नतिशील तथा आलोचनात्मक विचारधारा का नया स्तर तैयार हो जाये। मेरे विचार से जिस प्रकार अनुच्छेद 13 में अधिकारों को क्रमबद्ध किया गया है उससे ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं। श्रीमान्, इस विशेष अनुच्छेद की, जो कि मौलिक अधिकारों की आत्मा है, अंग्रेजों के विधान के भाष्यग्रन्थों से अथवा अमरीका के विधान-ग्रन्थों से अथवा अन्य किसी विधान से तुलना करने से कोई लाभ नहीं क्योंकि उनके आधार पूर्णतया भिन्न हैं। किसी व्यक्ति के यह कहने से कोई लाभ नहीं कि कोई विशेष बात अंग्रेजों के विधान में नहीं है। अंग्रेजों का कानून-विज्ञान सर्वथा भिन्न है, क्योंकि अंग्रेजों का

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

पार्लियामेंट पूर्णतया प्रथाश्रित अधिकारों की परिगणना का कोई प्रावधान नहीं करता है। प्रथाओं पर तो निर्भर किया भी नहीं जा सकता, क्योंकि वे बदलती रहती हैं और पार्लियामेण्ट पूर्ण प्रभुताशील होने के नाते उन्हें जब चाहे बदल सकती है। इस कार्य के लिये वैधानिक संशोधनों की भी आवश्यकता नहीं होती। पार्लियामेंट ऐसे नये कानून बना सकती है जो शताब्दियों से स्थापित रूढ़ियों और परिपाटियों को जड़ मूल से उखाड़ दे। परन्तु जहां तक अमरीका के उदाहरण का सम्बन्ध है, और यह सच है कि ऐसे अन्य उदाहरण हैं जो अमरीका के उदाहरण के अनुरूप हैं—हमारी विचारधारा और अमरीका के निर्माताओं की विचारधारा में तथा अब तक जो अमरीका ने माना है उसमें एक विशेष अन्तर है और वह यह है कि अमरीका के विधान का आर्थिक आधार हमारे विधान के उस आर्थिक आधार से, जिसको हम सोच रहे हैं, सर्वथा भिन्न है। अतः कोई भी सादृश्य किसी सीमा तक ही प्रयोज्य है इस कारण कोई भी हमारा मित्र, जो इस अनुच्छेद में अथवा अनुवर्त्ती अनुच्छेदों में अमरीका के विधान के विशेष प्रावधानों या विशेष शब्दों को लाना चाहता है, तो उसको यह मानना पड़ेगा कि इस सभा के बहुमत का आर्थिक दृष्टिकोण उससे सर्वथा अलग है जिस पर न्यूनाधिक रूप में प्रारम्भ से ही तथा उसके बाद भी अमरीका का विधान निश्चित हुआ और जिसके आधार पर वहां के विधिशास्त्र ने उस विधान से सम्बद्ध कई प्रकार की रूढ़ियों को जन्म दिया है।

श्रीमान्, मैं यह कहना चाहूंगा कि जो संशोधन मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने प्रस्तुत किये हैं, विशेष कर वे जो उन्होंने खण्ड (4), (5) और (6) पर किये हैं, उनसे मूल खण्डों में बहुत सुधार हो जाता है और मेरा निजी विचार यह है कि मूल मसौदे में जो कमियां थीं वे इनसे दूर हो जाती हैं। परन्तु मैं एक खास संशोधन पर जोर देना चाहूंगा जो मेरे मित्र श्री मुन्शी ने पेश किया है और जो यहां उपस्थित नहीं हैं। उस संशोधन का प्रयोजन केवल भावनात्मक ही है उसमें 'राजद्रोह' शब्द नहीं है। श्रीमान्, इस देश में 'राजद्रोह' शब्द के उल्लेखमात्र से हम कुपित हो जाते हैं क्योंकि हमारे राजनैतिक आन्दोलन के दीर्घ काल में 'राजद्रोह' शब्द का प्रयोग हमारे नेताओं के विरुद्ध किया गया। इस शब्द के प्रति घृणा प्रदर्शन करने में हम ही अनोखे नहीं हैं। वैधानिक कानून के विद्यार्थियों को यह स्मरण होगा कि 18वीं शताब्दि के अन्त में अमरीका की कानून की पुस्तकों में एक प्रावधान था, जो राजद्रोह के सम्बन्ध में एक विशेष कानून की व्यवस्था करता था जो केवल कुछ वर्षों के लिये था और न्यूनाधिक रूप में 1802 में अप्रचलित हुआ। इस शब्द से इस प्रकार की घृणा लगभग विश्वव्यापी सी प्रतीत होती है। यहां तक कि वे लोग भी घृणा प्रदर्शन करते हैं

जिनको इस शब्द के अर्थ और विषय से उतना कष्ट नहीं हुआ है जितना हमें। इसके साथ-साथ मेरे माननीय मित्र श्री मुन्शी का संशोधन जहां तक इस राज्य का सम्बन्ध है एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति करता है। यह सम्भव हो सकता है कि दस वर्ष पश्चात् मौलिक अधिकारों में भाषण-स्वातन्त्र्य, सम्मेलन-स्वातन्त्र्य के निरपेक्ष अधिकार के वर्जन की व्यवस्था करना आवश्यक न हो। पर देश की वर्तमान दशा में मेरे विचार से यह आवश्यक है कि इन अधिकारों के प्रयोग पर कुछ विशिष्ट निर्बन्ध होने चाहियें। मेरे माननीय मित्र भी मुन्शी द्वारा पेश किये गये संशोधन में राज्य का अर्थ विधान है और मेरे विचार से जब हम एक ऐसा विधान बना रहे हैं जो हमारी सम्मति में दो सम्भाव्य बाह्य विचारों का समझौता है और हमारे लोगों की बुद्धि के अनुरूप है, तो यह आवश्यक है कि उस विधान के संधारण के लिये हमें समस्त सम्भाव्य सावधानियों को बरतना चाहिये और इसलिये मैं विचार करता हूं कि मेरे माननीय मित्र श्री मुन्शी द्वारा पेश किया गया संशोधन एक सुखद मध्यममार्ग है और ऐसा है कि आवश्यकता पड़ने पर जिसकी व्याख्या ऐसी की जा सकती है, यदि दुर्भाग्यवश ऐसी आवश्यकता हो जाय, कि राज्य को विशृंखलात्मक शक्तियों के विरुद्ध पर्याप्त रक्षा प्राप्त हो जाये।

श्रीमान्, एक और विषय है जिसका मैं बैठने के पूर्व जिक्र करना चाहता हूं और वह यह है कि अनुच्छेद 13 का उपखण्ड (ग) बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। मैं नहीं जानता हूं कि लोग वास्तव में इस बात को मानेंगे या नहीं, जब उनको यह विदित होगा कि अन्य देशों में विशेषकर संयुक्त राष्ट्र अमरीका में मजदूरों के अधिकारों को मान्य करने के विषय के, यूनियन के रूप में सम्मेलन करने के विषय के प्रारम्भिक अधिकार प्राप्त करने में मजदूरों को असीम कष्ट सहने पड़े। मैं नहीं समझता कि इस विशेष अनुच्छेद का खण्ड 4 अनावश्यक रूप में खण्ड (1) के उप-खण्ड (ग) द्वारा प्रदत्त अधिकारों का न्यूनन करता हो। मेरे निजी विचार ये हैं कि हमने उन कठिनाइयों का अन्त करने का न्यूनाधिक रूप में प्रयास किया है जिनका सामना अन्य देशों को इस सम्बन्ध में करना पड़ा और हमने मजदूरों को संगठन करने के वैध अधिकार, अपने और संघ के सदस्यों के जो न्यायोचित अधिकार हैं, उनके लिये आन्दोलन करने और उनको प्राप्त करने का आश्वासन उनको दे दिया है। मेरे विचार से यह न्यूनाधिक रूप में इस देश के मजदूरों के लिये अधिकार-पत्र है और यह देख कर मुझे खुशी हुई कि इस विशेष अधिकार को कम करने के लिये स्थिर स्वार्थरत व्यक्तियों ने किसी प्रकार का भी प्रयत्न नहीं किया। श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र श्री मुन्शी के संशोधन और खण्ड (4), (5) और (6) में डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधनों तथा "युक्तियुक्त"

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

शब्द के परिवर्द्धन के साथ, जिसको मेरे माननीय मित्र श्री ठाकुरदास भार्गव ने रखा है, यह विशेष अनुच्छेद मेरी सम्मति से हमारे अधिकारों को उचित रूप से क्रमबद्ध करता है और उन अधिकारों का उचित रूप से निर्बन्धन भी करता हैं। इन विशेष अधिकारों का क्रियान्वित करना हमारे लोगों के चातुर्य्य पर तथा इस बात पर निर्भर होगा कि हम स्वतन्त्रता के विचारों को किस प्रकार उन्नत करते हैं जो कि अभी बहुत ही अवनत अवस्था में हैं। नि:सन्देह यह सत्य है कि हमारे नेतागण कभी-कभी जल्दबाजी करते हैं, वे और अधिक शक्तियां चाहते हैं, जब उनके सामने कठिन परिस्थितियां आ जाती हैं तो वे यह सोचते हैं कि उनसे मुक्त होने का एकमात्र साधन यह है कि और शक्तियां प्राप्त हों। वे इस बात को नहीं मानते कि वे लोगों के नेता है इस देश के छटे छटाये नेता हैं। प्रत्येक नेता का अपना व्यक्तित्व है और उनके व्यक्तित्व तथा प्रभाव का सामूहिक असर किसी भी प्रचण्ड अधिकार की आवश्यकता को मेट सकता है। इस प्रकार का आत्मविश्वास तो कुछ समय पश्चात् ही उत्पन्न होगा—इस समय तो वे उन लोगों के पदचिह्नों का अनुसरण करना चाहते हैं जो इस देश के शासन-कार्य में हमारे पूर्ववर्त्ती थे, जिनका लोगों के साथ कोई भी सम्पर्क न था, जो कभी मंच पर नहीं पहुंच सकते थे और किसी कार्य को करने के लिये लोगों को प्रेरित नहीं कर सकते थे और जो केवल ऐसी शक्ति चाहते थे जिनका नौकरशाही के माध्यम द्वारा प्रयोग हो सके। इस विचारधारा में परिवर्तन होगा और अवश्य होगा, क्योंकि हमारे नेता गण्यमान्य व्यक्ति हैं। सभा इस बात को अवश्य ही स्वीकार करेगी कि प्रधान मन्त्री और उपप्रधान मन्त्री यदि किसी मंच पर पहुंच जायें तो करोड़ों व्यक्तियों को प्रभावित कर सकते हैं, केवल उनके शब्द लोगों के कानों तक पहुंचने चाहिये। जिन अधिकारों को यहां क्रमबद्ध किया गया है उनको इतना कम करना, कि वे निष्प्राण हो जायें, उन नेताओं पर निर्भर है जो हमें आगे प्राप्त होंगे और वे नेता लोग अभी देवताओं की गोद में खेल रहे हैं। उस समय तक के लिये हमने यथाशक्ति वह सर्वोत्तम कार्य किया है जिसकी कल्पना मात्र ही मानव कर सकता है।

श्रीमान्, हमारे समक्ष जो अनुच्छेद है, मैं उसका समर्थन करता हूं।

श्री लक्ष्मीनारायण साहू (उड़ीसा : जनरल): सम्माननीय उपप्रधान जी, जो अनुच्छेद 13 पर हम लोग यहां विचार कर रहे हैं उस अनुच्छेद पर पहले मैं एक बात कहना चाहता हूं कि जो स्वाधीनता हम लोगों को इसमें दी गई है उस स्वाधीनता के पहले subject to other provisions of this article लिख

कर पहले से डरा दिया गया है कि तुम लोग स्वाधीन हो, तुमको यह स्वाधीनता मिलती है, लेकिन स्वाधीनता इतने तरीके की मिलती है ज्यादा नहीं। फिर इसके नीचे जो उपखण्ड 2, 3, 4, 5, 6 लगाये गये हैं उससे फिर भी कहा जाता है कि तुम लोग इतने स्वाधीन ही हो, नहीं तो तुम लोगों को बहुत तकलीफ होगी, तुम दुःख में गिरोगे।

इसलिये मैं पहले कहना चाहता हूं कि यह दोनों हटा देने चाहिये। पहले तो "subject to other provisions of this article" इसको हटा देना चाहिये और नीचे जो उपखण्ड लगाये गये हैं 2, 3, 4, 5, 6 उनको हटा देना चाहिये तब तो हम लोगों के सामने स्वाधीनता की जो मूर्ति है वह हमें मालूम होगी कि कैसी है। जब तक यह उपधारा रहेगी तब तक हम लोगों को स्वाधीनता की पूरी मूर्ति मालूम नहीं हो सकती।

और एक बात मैं देखता हूं कि यह सेक्शन बनाने में ऐसा हुआ कि हम लोग जैसे एक मन्दिर बनाते हैं तो मन्दिर बनाते-बनाते, उसका जो प्रवेश द्वार है, जिसको हम लोग मुखशाला बोलते हैं, वह इतना बड़ा हो गया कि मन्दिर बहुत छोटा हो गया। हम लोगों के यहां उड़िया में एक कहावत है:

"घरे न पसुनू चाल बाजुछि देर लकू मुखशाला बलि गला"। इसका मतलब यह है कि हम लोग एक घर बनायें लेकिन घर के भीतर घुसने के वक्त केलपोष या (thatch) सर में लगता है। इसलिये मैं देखता हूं कि इसके ऊपर बहुत बहस हो गई है तो भी हम चाहते हैं कि हम लोग इसके ऊपर और अच्छी तरह से सोचें विचारेंगे और Drafting Committee इस पर ज्यादा ध्यान देगी और इस प्रकार की जो चीजें रहती हैं उनको हटा देना चाहिये और क्लाज 2, 3, 4, 5, 6 को हटा देना चाहिये। यह जब तक नहीं होगा हम लोग दिल में स्वाधीनता का स्वाद नहीं समझ सकते हैं, और बार-बार हमको इसका डर लगेगा।

यह कानून बनाने के लिये मैं देखता हूं कि जो आदमी कानून अपनी तरफ से तोड़ने के लिये कोशिश करते थे वही आदमी जब इस स्थान पर आ गये हैं, शासन के स्थान पर तो उन्हें जैसे डर लगता है कि बाहर के आदमी जो हैं वह सब कानून तोड़ देंगे, इसलिये वह कानून को इतना जकड़ देते हैं कि जिस से बाहर के आदमी जो अभी शासन के मालिक हैं उनसे बाहर जो आदमी हैं वह इधर-उधर भाग नहीं सकते हैं।

[श्री लक्ष्मीनारायण साहू]

यह तो मैं कहता हूं कि सेक्शन 13 के भीतर जो हम लोग अभी बनाते हैं Draft Constitution उसमें बहुत ऐसी धारायें आ गई हैं, जिसमें हम लोग इधर-उधर भाग नहीं सकते हैं, तो भी क्यों इतना डर होता है। Article 25 में तो सब कहा गया है कि: "The right to move Supreme Court by appropriate proceedings for the enforcement of the rights conferred by this part is guaranteed." अत: अनुच्छेद 13 के सब provisions हटा देने चाहियें। आर्टिकल 25 से तब तो गवर्नमेण्ट को भी सुविधा होगी और जो good citizen है, उसको भी सुविधा हो जायेगी। जब तक यह नहीं होगा तब तक तो हम लोग स्वराज्य का आनन्द नहीं पा सकेंगे। और एक बात यह भी स्वच्छ है कि हम लोग बराबर चिल्लाते थे कि self-government is better than good government अब हम लोग ऐसी कोशिश करते हैं कि self-government का ख्याल नहीं करते हैं, कैसी good government होगी और good government किसके लिये। आज जो स्थान पर है वह तो इतना डरते हैं कि वह जिसे आने का आदर दिये थे, शायद जो बाहर के आदमी हैं, पोलिटिकल पार्टीज़ हैं, वह शायद कानून तोड़ देंगी। इसलिये इसमें बहुत बन्धन रखे गये हैं। इसलिये मैं चाहता हूं कि Fundamental Rights जो हैं वह Fundamental होने चाहियें। इसके भीतर इतने क्लाज, सब-क्लाज, इतने भेद रखने ठीक नहीं हैं।

और एक बात आदिवासियों के बारे में। श्री जयपालसिंह ने जो कुछ कहा है उसके साथ मैं थोड़ी दूर तक सहारा देना चाहता हूं। आदिवासी जो हैं वह आर्म्स ले कर जाते हैं। लेकिन यह हमको देखना चाहिये कि इस अंश में जो कहा गया है कि "to assemble peaceably and without arms"। उन लोगों की जो रीति-रिवाज हैं जिसमें वह आर्म्स लेकर जाते हैं उसको हटा दिया जायेगा या नहीं। मेरा ख्याल है कि जहां aboriginals के बारे में दूसरी-दूसरी बातें कही हैं, उन पर शायद यह लागू नहीं होगा। तो जब लागू नहीं होगा तो यह ठीक है। तो भी यह रहता है। तो "to assemble peaceably and without arms" जो यहां है इसमें मेरा कोई झगड़ा नहीं है। लेकिन आर्म्स एक्ट को हटा कर सब आदमियों को आर्म्स देने का अधिकार और हम लोग डरपोक नहीं रहेंगे, यह प्रबन्ध इस कान्स्टीट्यूशन में कहीं नहीं है। इसलिये मैं चाहता हूं कि यह प्रबन्ध यहां होना चाहिये कि आर्म्स एक्ट हटा दिया गया और सब आदमियों को आर्म्स रखने की इजाजत दी जायेगी। इस बारे में मैं ज्यादा नहीं कहना चाहता हूं।

अक्सर आज minority, minority बोलते हैं, उसकी बात अब नहीं करनी चाहिये। minority क्या है, जब हम लोग सब आदमियों के लिये एक provision करते हैं दो नहीं हैं, तो minority कौन है। Depressed Class minority है या नहीं? minority है। Aboriginals minority है या नहीं? minority है। मुसलमान minority है या नहीं? मुसलमान minority है। और दूसरे-दूसरे आदमी हैं जो कहेंगे हम भी minority हैं। Political parties में minority थी हिन्दू मुसलमान की, लेकिन फिर दूसरे आ गये। डिप्रेस्ड क्लासेज के भीतर दूसरा आ जायेगा। यह aboriginals इसी तरह हैं। इसलिये मैं चाहता हूं कि यह शब्द "minority" को हटा देना चाहिये, जहां-जहां वह आया है और सेक्शन 13 को ऐसा बनाना चाहिये जिसमें सब आदमियों के दिल में ऐसा भाव पैदा हो जायेगा कि सच्चा हम लोगों को स्वराज्य मिला है, स्वाधीनता मिली है और किसी आदमी को डर नहीं है। वह जहां चाहे हर एक आदमी के माफिक उसे भी घूमने-फिरने की इजाज़त मिली है, यह समझता है।

***श्री देशबन्धु गुप्ता** (दिल्ली): सभापति जी, इससे पहले मुझे एक बार ड्राफ्टिंग कमेटी की सिफारिशात पर इजहार राय करने का अवसर मिला है। उस मौके पर मैं इस काबिल न था कि मैं अपने लायक दोस्त डॉक्टर अम्बेडकर को और ड्राफ्टिंग कमेटी को इनकी सिफारिशात पर मुबारिकबाद दे सकता। उन सिफारिशात का सम्बन्ध चीफ कमिश्नर्स प्रोवेन्सेज़ से था। लेकिन आज मैं यह महसूस करता हूं कि यह दफा 13 जो कि हमारे बुनियादी हकूक से ताल्लुक रखती है वह इस काबिल है। खासतौर पर उस में जो तरमीम कर दी गई है उसके बाद यह दफा इस काबिल हो गई है कि उस पर हमें ड्राफ्टिंग कमेटी को हृदय से मुबारिकबाद देना चाहिये।

मेरे बाज दोस्तों ने यह ऐतराज उठाया है कि हकीकत में जो कुछ दिया गया है, वह दूसरे हाथ से ले लिया गया है लेकिन अगर आप गौर करें तो दरअसल ऐसा नहीं है। अगर किसी व्यक्ति को ऐसी आज़ादी दी जाये जिसका अर्थ यह हो कि उससे दूसरे व्यक्ति की आज़ादी में फर्क आये तो मैं समझता हूं कि इस तरह की आज़ादी की मांग करना वास्तव में सही किस्म की आज़ादी की मांग करना नहीं है। मिसाल के तौर पर यह कहा गया है कि जो लोग जरायम पेशा हैं, उन के एक जगह से दूसरी जगह जाने पर पाबन्दी लगा दी गई है। मैं पूछना चाहता हूं कि क्या यह ठीक होगा कि जब कि क्रिमिनल ट्राइब्स के लोग दूसरे लॉ अबाइडिंग सिटीज़न के लिये एक मुसीबत का सामान हो सकते हैं तो उनके

[श्री देशबन्धु गुप्ता]

मूवमेंट पर कोई रेस्ट्रिक्शन न लगाया जाये क्या कोई सीरियसली यह कह सकता है कि क्रिमिनल ट्राइब्स पर जो पाबन्दियां लगाई जाती हैं, जो रेस्ट्रिक्शन लगाये जाते हैं वह नहीं होने चाहियें और अगर वह लगाये जाते हैं तो उनसे हमारी आज़ादी में किसी प्रकार की कोई कमी पड़ जाती है।

इसी प्रकार से ज़मीन के बारे में कहा गया है कि हमारे हरिजन भाई अब ज़मीन नहीं खरीद सकेंगे। 'लेण्ड एलीनेशन एक्ट' इसी प्रकार से बना रहेगा। यह ठीक है कि 'लेण्ड एलीनेशन एक्ट' का काबिल एतराज़ पहलू या आब्जेक्शनेबुल फीचर यह था कि चन्द कास्ट डिफाइन कर दी गई थीं। जैसे कोई बनिया है या ब्राह्मण है या हरिजन है तो वह ज़मीन नहीं खरीद सकता। वह एक गलत बात थी। लेकिन आज जो यह एक बुनियादी हक ज़मीन खरीदने का हर शख्स को दिया जा रहा है, उसने हकीकत में इस रेस्ट्रिक्शन को हटा दिया है। अब अगर कोई पाबन्दी लगाई जायेगी तो यह साबित करना होगा कि वह माकूल रेस्ट्रिक्शन है या नहीं। और इसका फैसला जो बात इसी दफा में रखी गई है, उसके मुताबिक हमारी सुप्रीम कोर्ट करेगी। यह एक बहुत बड़ी चीज़ है। दफा हाजा के मसौदे में पहले एक कमी थी मगर रीज़नेबिल शब्द की जो तरमीम मेरे दोस्त पण्डित ठाकुरदास भार्गव की तहरीक पर मानी गई है, उसमें इस कमी को भी दूर कर दिया है। अब कोई ऐसी बात नहीं है कि जिससे किसी तरह की कोई नाजायज़ पाबन्दी लगाई जा सकती हो। ऐसा हुआ तो उसके खिलाफ अपील होगी जिसका फैसला हमारे यहां की सुप्रीम अदालत करेगी। जिसमें हमारे हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े माहिरीन मुश्तमिल होंगे। इसलिये मैं समझता हूं कि हमें इस धारा का स्वागत करना चाहिये। इसके बारे में कोई इस तरह का इम्प्रैशन देना कि यह हमारी आज़ादी में किसी तरह की कमी करती है, एक गलत बात होगी। हमें समझना चाहिये कि अब हमारा देश आज़ाद हो चुका है। और जैसा कि मेरे मित्र पंडित अलगूराय शास्त्री ने कहा कि इस आज़ादी के साथ ही साथ हम पर कुछ जिम्मेदारी भी आयद होती हैं। और उन जिम्मेदारियों को अगर हम नहीं मानेंगे तो वह एक जंगल की आज़ादी होगी। और मैं समझता हूं कि वह एक ऐसी आज़ादी नहीं होगी कि जिसका हम स्वागत कर सकें। इसलिये मैं समझता हूं कि यह क्लाज जिस प्रकार से अब बन चुका हैं, और इसमें जो तरमीम हो चुकी हैं, उसे हमें सहर्ष स्वीकार करना चाहिये और समझना चाहिये कि यह हमारे कान्स्टीट्यूशन

का एक आधार है और ऐसा आधार है जिस पर हम खुशी महसूस कर सकते हैं। और दुनिया के सामने अपना मस्तक ऊंचा करके चल सकते हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** श्रीमान्, मैं अनुच्छेद 13 को बहुत ही महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद समझता हूं क्योंकि वह उन कुछ मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में है जो संसार के समस्त स्वतन्त्र देशों तथा समस्त स्वतन्त्र नागरिकों को समान रूप से प्राप्त हैं। इस अनुच्छेद पर अनेकों संशोधन पेश किये गये हैं। उन सबको तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है। कुछ लोग खण्ड 1 में दिये गये अधिकारों पर समस्त आयंत्रणों को हटाना चाहते है। अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) में जिन मौलिक अधिकारों की प्रत्याभूति की गई है वे भाषण और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य, सम्मेलन-स्वातन्त्र्य, राज्य-क्षेत्र के अन्तर्गत अबाध पर्यटन का अधिकार, कोई भी व्यवसाय करने का अधिकार और कहीं भी बस जाने का अधिकार। इस खण्ड में रखे गये मौलिक अधिकारों के अपवाद हैं और वे अनुवर्त्ती खण्ड (2), (3), (4), (5) और (6) में दिये गये हैं। कुछ संशोधन इन खण्डों के निकालने के लिये हैं और कुछ संशोधन सुधार के लिये हैं जिससे कि इन परादिकों द्वारा उन अधिकारों का हरण न किया जा सके जो खण्ड (1) के अन्तर्गत प्रत्याभूत किये गये हैं।

पण्डित ठाकुरदास भार्गव ने एक संशोधन पेश किया है जिसमें यह कहा गया है कि यदि उन अधिकारों पर आयन्त्रणों का आरोप करना ही है जो खण्ड (1) में प्रत्याभूत किये गये हैं तो उन आयंत्रणों को युक्तियुक्त होना चाहिये। मेरा विश्वास है कि यह संशोधन यथेष्टरूप में परिस्थिति के अनुकूल होगा।

भाषण-स्वातन्त्र्य के सम्बन्ध में हमने उस आयंत्रण में सुधार कर लिये हैं जिसका खण्ड (2) में आरोप किया गया है। 'राजद्रोह' शब्द को हटा दिया गया है। यदि हमको यह विदित हो जाये कि उस समय की सरकार का यह स्वभाव हो गया है कि वह अपनी सत्ता स्थापित बनाये रखे, चाहे उसका प्रशासन कितना ही बुरा हो, तो देश के प्रत्येक व्यक्ति का यह मौलिक अधिकार होना चाहिये कि वह अहिंसात्मक तरीके से, लोगों को प्रेरित करके, प्रशासन में उसके दोष प्रकट करके, उसकी कार्यविधि में दोष प्रकट करके तथा ऐसे ही अन्य प्रकारों द्वारा उस सरकार को उखाड़ फेंके। 'राजद्रोह' शब्द पूर्ववर्त्ती प्रशासन-काल में घृणित हो गया था। हमने इसलिये 'राजद्रोह' शब्द को हटाने के संशोधन को स्वीकार किया है, सिवाय उस सूरत में जब कि समूचे राज्य को उखाड़ फैंकने के लिये या शक्ति

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

द्वारा अथवा अन्य प्रकार से नष्ट करने के लिये, जिससे कि दुर्व्यवस्था उत्पन्न हो जाये, प्रयास किया जाये। परन्तु सरकार पर हर प्रकार के आक्रमण को कानून के अन्तर्गत अपराध नहीं बनाना चाहिये। हमने वह स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है और हमने यह निश्चित कर दिया है कि कोई भी सरकार अपनी हिफाजत में कोई दण्ड-कार्यवाही तब तक न करे जब तक कि 'भाषणों द्वारा समूचे राज्य को उखाड़ फैंकने का प्रयास न किया जा रहा हो।

इसके पश्चात् कुछ ऐसे संशोधन हैं जो निर्धारित किये हुये मौलिक अधिकारों में परिवर्द्धन करने के लिये रखे गये हैं। उन पर विवरणपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। उन संशोधनों में से प्रमुख संशोधन इस बात की प्रत्याभूति करने के सम्बन्ध में हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को वैयक्तिक कानून के प्रयोग करने का अधिकार है। हमको समझ लेना चाहिये कि इसका क्या अर्थ होगा। हमने उस निदर्शक खण्ड में वैयक्तिक कानून पर पर्याप्त वाद-विवाद किया है; जिसमें यह निदेश दिया गया था कि जल्दी या देर में एक रूप व्यवहारविधि-संहिता बनाई जाय। इस प्रकार के संशोधन पेश किये गये हैं और कहा गया है कि जब तक मौलिक अधिकारों में ऐसा प्रावधान न रखा जायेगा तब तक कोई सुरक्षा नहीं होगी और बहुसंख्यक सम्प्रदाय अपने वैयक्तिक कानून को सबके लिये लागू कर सकेगा या नीचता से किसी भी सम्प्रदाय के वैयक्तिक कानून को रौंद सकेगा। हम सम्प्रदायों को लें। यहां मुख्यतया तीन धर्मों के लोग रहते हैं। यदि हम पहले मुसलमानों के बारे में विचार करें तो हमें पता चलता है कि मौलिक अधिकारों में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसके बल पर, उनके वैयक्तिक कानूनों की मनमानी अवहेलना की जा सके। इस देश का विद्यमान कानून इस बात की यथेष्ट प्रत्याभूति देता है कि ऐसा न हो सकेगा। पर हमारे जिन मित्रों ने ये संशोधन पेश किये हैं वे इस बात के लिये दुहरी प्रत्याभूति चाहते हैं कि उनके वैयक्तिक कानूनों में हस्तक्षेप न किया जाये। मेरा निवेदन यह है कि यह मांग अव्यवहार्य है क्योंकि उक्त उन्नत समाज में रहने वाला व्यक्ति, चाहे फिर वह किसी विशेष सम्प्रदाय का सदस्य ही क्यों न हो, यह चाहता है कि उसके वैयक्तिक कानून में परिवर्तन हो जाये। आइये, हम मुस्लिम कानून को ही लें। मैं केवल उन दो या तीन संशोधनों का ही उल्लेख करूंगा जो शरियत के अनुसार निर्धारित कानूनों में किये गये हैं। अभी-अभी 1939 में ही केन्द्रीय विधान-मण्डल ने विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत मुसलमानों में विवाह-विच्छेद करने का कानून पारित

किया था। आपको यह जान कर खुशी होगी कि मुस्लिम कानून के अन्तर्गत मनुष्य को तलाक शब्द का उच्चारण करके विवाह-विच्छेद करने का पूर्ण अधिकार है और एक और प्रकार का विवाह-विच्छेद है जिसे खुला कहते हैं। स्त्री को सामान्यतया विवाह-विच्छेद का अधिकार नहीं है। उसे ऐसा करने के लिये किसी न्यायालय की शरण लेनी पड़ती है और नामर्दी इत्यादि ऐसे कई-कई कारणों को दिखाना पड़ता है। इस सबको अब सरल कर दिया गया है। एक और विचार यह है कि एक स्त्री जो पति के साथ एक घर में गृहस्थ जीवन का पालन नहीं कर सकती है उसे कुछ परिस्थितियों में पृथक् होने का अधिकार है। इन पर न तो अब तक विचार ही किया गया है और न मुसलमानों के विवाह-विच्छेद अधिनियम में इनकी व्यवस्था ही है। विधान-मण्डन का सदस्य होने के नाते मैं उस समिति का सदस्य था जिसने इस प्रश्न पर विचार-विमर्श किया था। हमने इस विषय को पूर्णतया तत्सम्बन्धी मुसलमान सदस्यों के निश्चय के लिये छोड़ दिया। विधान-मण्डल में शरियत के कानून का पुर:स्थापन हुआ और भारत के प्रान्तों में विभिन्न भांति के कानूनों को शरियत के कानून के अनुरूप बनाने का एक अधिनियम पारित किया गया। यह चार वर्ष पूर्व किया गया था। वक्फ वैधकरण अधिनियम, 1930 में पारित किया गया था। ऐसा समय आ सकता है जब किसी विशेष सम्प्रदाय के सदस्य यह महसूस करें कि सम्प्रदाय के हितार्थ उन्नतशील कानून का निर्माण किया जाना आवश्यक हैं। परन्तु यदि हम यहां ऐसा प्रावधान रख दें कि वैयक्तिक कानून में हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा तो उस कानून में परिवर्तन करने का कोई अधिकार उस सम्प्रदाय के सदस्यों को नहीं रहेगा। इसलिये यह आवश्यक नहीं है कि हम मौलिक अधिकारों के रूप में इसका पुर:स्थापन करें। इस विधान में ऐसा कुछ भी नहीं है जो बहुसंख्यकों को अल्पसंख्यकों पर किसी प्रकार अत्याचार करने दें। यह तो केवल शक्ति प्रदान करने वाला प्रावधान है। जिस अल्पसंख्यक सम्प्रदाय पर प्रभाव पड़ता हो उसकी अनुमति के बिना ऐसा कोई कानून नहीं बनाया जायेगा। इसलिये मुझे यह लगता है कि इसे मौलिक अधिकारों में रखना आवश्यक है।

मेरे मित्र श्री कामत चाहते हैं कि हमें शस्त्र-धारण करने का अधिकार होना चाहिये और इस अधिकार को मौलिक अधिकारों में रखा जाये। यह सच है कि बहुत समय से कांग्रेस प्रति वर्ष प्रस्ताव पारित करती चली आई है कि हमें शस्त्र-धारण करने का अधिकार प्राप्त हो। पर अब परिस्थिति बदल गई है। उस समय हम गुलाम थे और अपने आप को खूब सुसज्जित करना चाहते थे जिससे कि आवश्यकता पड़ने पर हम विदेशी शासन से मुक्त होने के लिये शस्त्रों का प्रयोग

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

कर सकें। परन्तु आज इस सुसभ्य संसार में, क्या मैं अपने माननीय मित्र से पूछ सकता हूं कि वे क्या यह सोचते हैं कि अपने को बचाने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को युद्ध करने का अधिकार दिया जाये। विकट परिस्थितियों के अतिरिक्त अन्यत्र शक्ति का प्रयोग नहीं होना चाहिये। यदि शक्ति को प्रयोग करना ही है तो उसको राज्य में केन्द्रीभूत करना चाहिये। राज्य को ही मनुष्यों अथवा नागरिकों का मध्यस्थ होना चाहिये जब कि वे लड़ना चाहते हों। व्यक्तिगत रूप में किसी भी नागरिक को दूसरे पर आक्रमण नहीं करने देना चाहिये। शस्त्र धारण करने के अधिकार का बहुधा दुरुपयोग किया जाता है।

***श्री एच.वी. कामतः** अपनी रक्षा के निमित्त भी नहीं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** जिन बलवान नवयुवकों के खून में जोश है उनके लिये आत्मरक्षा करना बहुधा आक्रमण के बराबर होता है, जैसी बात कि श्री कामत के बारे में कही जा सकती है। श्री कामत की आत्मरक्षा बहुधा आक्रमण के रूप में ही होती है।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं इस बात पर घोर आपत्ति करता हूं, श्रीमान्।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** मुझे खेद है, श्रीमान्।

***उपाध्यक्षः** उन्होंने अपना खेद प्रकट कर दिया है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** मैं अपने युवा मित्र और उनकी वीरता का महान आदर करता हूं।

जहां तक साम्प्रदायिक प्रश्न का सम्बन्ध है, एक ऐसा संशोधन यहां उपस्थित किया गया है जिसके द्वारा उसको मौलिक अधिकारों में रखने की अपेक्षा की गई है। ऐसा नहीं हो सकता है। इस आशय के लिये दण्ड-संहिता में 153 और 155-क धाराओं के अन्तर्गत प्रावधान हैं और वे ही पर्याप्त हैं।

विचार-स्वातन्त्र्य के सम्बन्ध में मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि एक ऐसा संशोधन पेश किया गया है जिसमें कहा गया है विचार-स्वातन्त्र्य होना चाहिये। विचार-स्वातन्त्र्य को कोई नहीं रोक सकता। वह एक मौलिक अधिकार है। वह तो अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य है जो मिलना चाहिये। मुद्रण-स्वातन्त्र्य का अर्थ अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य है। तार और टेलीफोन के द्वारा भेजी गई सूचना को गुप्त

रखने के अधिकार के बारे में मत-विभिन्नता हो सकती है और वर्तमान प्रावधान में हमें काई परिवर्तन नहीं करने देना चाहिये।

इसलिये सिवाय उन संशोधनों के जो डॉक्टर अम्बेडकर को मान्य हैं औरों को स्वीकार नहीं करना चाहिये। वे आपत्तिजनक हैं और उनको विधान में स्थान नहीं मिलना चाहिये।

***श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार : जनरल): मैं प्रस्ताव करता हूं कि अब इस विषय पर मत लिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** मुझसे एक बात पूछी गई थी कि मैंने सभा की कार्यवाही का किस प्रकार से संचालन करने का प्रयत्न किया है। उस समय मैंने कोई सूचना देने के लिये मना कर दिया था क्योंकि मैंने सोचा था कि मैं जिस प्रकार कार्यवाही का संचालन करता हूं उसकी व्याख्या करना मेरे स्वविवेक पर छोड़ दिया जाये। इस समय मेरे पास 25 सज्जनों की अलग-अलग 25 सूचनायें हैं और वे सब बोलने के लिये इच्छुक हैं। इसमें कोई शक नहीं कि इनमें से प्रत्येक व्यक्ति वाद-विवाद द्वारा कुछ न कुछ सहायता देगा ही। परन्तु अनिश्चित काल तक के लिये वाद-विवाद नहीं बढ़ाया जा सकता हैं इसमें वे लोग शामिल नहीं हैं जो अपनी सम्मति प्रदान करने में समान रूप से योग्य हैं और जो खड़े हुये थे पर उन्होंने मेरे पास कोई सूचना नहीं भेजी। मैंने सभा का एक समूचे रूप में विचार प्राप्त करने का प्रयत्न किया है। यदि माननीय सदस्य कृपा कर उन वक्ताओं की सूची का अनुशीलन करेंगे जो सभा में भाषण दे चुके हैं तो उनको विदित होगा कि प्रत्येक प्रान्त का प्रतिनिधान हो चुका है और प्रत्येक प्रान्त के तत्कथित अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधान हो चुका है। पण्डित लक्ष्मीकांत मैत्र चाहे जो कुछ कहें, मेरे विचार से बंगाली बहुसंख्यकों में हैं। मेरे विचार से तो विषय पर पूर्ण वाद-विवाद हो चुका है। पर, सदैव की भांति मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या सभा की यह इच्छा है कि हम वाद-विवाद समाप्त कर दें।

***माननीय सदस्यगण:** जी हां, जी हां।

***उपाध्यक्ष:** तो फिर मैं डॉक्टर अम्बेडकर को उत्तर देने के लिये आमन्त्रित करता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद 13 पर जो अनेकों संशोधन पेश किये गये हैं उनमें से मैं संशोधन

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

संख्या 415, श्री मुन्शी के संशोधन सं. 86 द्वारा संशोधित संशोधन सं. 453 और श्री ठाकुरदास भार्गव के "युक्तियुक्त" शब्द को जोड़ देने वाले संशोधन द्वारा परिवर्तित सूची 1 का संशोधन सं. 49 को स्वीकार करने का विचार रखता हूं।

***उपाध्यक्षः** क्या आप कृपा करके हमें यह बतायेंगे कि संशोधन सं. 415 को स्वीकार करने का आप किस प्रकार विचार रखते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** वह संशोधन जो "इस अनुच्छेद के अन्य प्रावधानों के अधीन" शब्दों को निकालने का प्रयास करता है।

***उपाध्यक्षः** और इसके पश्चात् क्या?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इसके पश्चात् मैं संशोधन सं. 86 द्वारा परिवर्तित रूप में सं. 453 और पण्डित ठाकुरदास के 'युक्तियुक्त' शब्द के पुर:स्थापन करने वाले संशोधन द्वारा परिवर्तित रूप में सूची 1 के संशोधन सं. 49 को स्वीकार करता हूं।

अन्य संशोधनों और इन संशोधनों को पेश करते हुये वक्ताओं के भाषणों में उठाये गये प्रश्नों के सम्बन्ध में मैं देखता हूं कि केवल थोड़े से ही प्रश्न हैं जिनके उत्तर देने की आवश्यकता है।

अनुच्छेद 13 पर सामान्य आक्रमण के सम्बन्ध में जिसको उपखण्डों से खण्ड (1) तक केन्द्रित किया गया है, मैं यह कह सकता हूं कि सभा अब यह प्रतीत करने लगी होगी कि पुर:स्थापित किये गये संशोधनों के सहित अनुच्छेद का जो स्वरूप हो गया है वह सामान्यतया संतोषजनक है। मेरे विचार में अनुच्छेद 8 की महत्ता पर मेरी व्याख्या से, "वर्तमान विधि" पद पर मेरे संशोधन से और "युक्ति-युक्त" शब्द के पुर:स्थापन से, उन दोषों का निराकरण हो जाता है जो माननीय सदस्यों ने भाषण देते समय प्रकट किये थे। और मैं समझता हूं कि मेरे मित्र प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना, श्री टी.टी. कृष्णमाचारी और श्री अलगूराय शास्त्री द्वारा दिये गये भाषणों से सभा को यह विश्वास हो गया होगा कि संशोधनों के सहित अनुच्छेद का जो वर्तमान स्वरूप है उसको ग्रहण करने में अब कोई कठिनाई नहीं होगी। इसलिये इस अनुच्छेद के समर्थन में जो कुछ मेरे मित्रों ने कहा है उससे अधिक मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता हूं। सच तो यह है कि इस

अनुच्छेद के समर्थन करने हेतु दिये गये भाषणों में जिन तर्कों का प्रयोग किया गया है उनको और सुन्दर बनाने में मुझे बहुत ही कठिनाई प्रतीत होती है।

मैं इसलिये अन्य विषयों को लूंगा। उनमें से भी बहुतों को मेरे मित्र श्री अनन्तशयनम् आयंगर द्वारा निपटा दिया गया है और, श्रीमान्, यदि आप मुझे नहीं बुलाते तो मैं यही कह देता कि उनके भाषण को मेरा भाषण समझ लिया जाये, क्योंकि उन्होंने उन समस्त विषयों को निपटा दिया है जिन पर मैंने ध्यान दिया था।

मैंने तो केवल एक बात पर ध्यान दिया है और अपने उत्तर में उसका हवाला देने के लिये मैंने सोचा था। मेरे मित्र प्रो. के.टी. शाह ने कहा था कि मुद्रण-स्वातन्त्र्य के सम्बन्ध में मौलिक अधिकारों में कुछ नहीं कहा गया है। मेरे विचार में जो उत्तर मेरे मित्र श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने दिया है वह पूर्ण उत्तर है। किसी व्यक्ति या नागरिक की अभिव्यक्ति ही मुद्रण का दूसरा रूप है। मुद्रण के कोई विशेष अधिकार नहीं होते जो किसी नागरिक को उसके निजी रूप में न दिये जायें या जिनका वह प्रयोग न कर सके। मुद्रित प्रति के सम्पादक अथवा प्रबन्धक सब नागरिक ही होते हैं और इस कारण जब कि वे समाचार-पत्रों में कुछ लिखना चाहते हैं तो वे केवल अपने अभिव्यक्ति-अधिकार का प्रयोग करते हैं। इसलिये मेरे विचार से तो मुद्रण-स्वातन्त्र्य के खास ज़िक्र की कोई जरूरत नहीं है।

शस्त्र-धारण करने के सम्बन्ध में, जिस पर मेरे मित्र श्री कामत इतने अधिक उत्तेजित हो गये थे, मेरे विचार से जो स्थिति हमने ग्रहण की है वह बिल्कुल स्पष्ट है। यह सत्य है और सबको विदित है कि कांग्रेस इस बात का आन्दोलन करती रही कि शस्त्र-धारण करने का अधिकार होना चाहिये। इसको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता है। वह तो इतिहास सम्बन्धी बात है। पर साथ ही साथ मेरे विचार से सभा को यह नहीं भूल जाना चाहिये कि जिन परिस्थितियों में कांग्रेस ने ऐसे प्रस्ताव स्वीकार किये थे वे परिस्थितियां अब इस समय वर्तमान नहीं हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** बड़ा ही चातुर्यपूर्ण तर्क है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जी हां, इसीलिये ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों को शस्त्र-धारण करने की आज्ञा नहीं दी थी—और ऐसा उन्होंने शान्ति और आदेश के आधार पर नहीं किया था बल्कि इस आधार पर कि एक विदेशी सरकार के विरोध में अधीनस्थ प्रजा को शस्त्र-धारण करने का अधिकार नहीं होना चाहिये जिससे कि वह सरकार को उखाड़ फैंकने के लिये संगठित न हो सके।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

अतः मेरे विचार से वे आधारभूत विचार, जिनसे प्रेरित होकर ये संकल्प पारित किये गये थे, अब मिट गये हैं। वर्तमान परिस्थितियों में मैं स्वयं यह नहीं सोच सकता कि राज्य किस प्रकार शासन-कार्य का संचालन कर सकेगा; यदि प्रत्येक व्यक्ति को बाजार जाने और बेरोक-टोक तमाम तरह के आक्रमणकारी शस्त्र खरीदने का अधिकार प्राप्त हो।

***श्री एच.वी. कामतः** एक स्पष्टीकरण का प्रश्न है, श्रीमान् इस अधिकार को आयन्त्रित करने के लिये परादिक दिया हुआ है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** वह परादिक क्या करता है? उस परादिक में क्या कहा गया है? परादिक केवल नियमन कर सकता है और "नियमन" शब्द की व्याख्या शर्तों के न्यायालयों ने यह की है कि उसका अर्थ है विनिधान करना, पर शर्तें कभी ऐसी नहीं हो सकतीं, जिनसे नागरिकों के शस्त्र-धारण करने का अधिकार निराकृत हो जाये। इसलिये नियमन स्वयं किसी नागरिक को, जो शस्त्र-धारण करने का अधिकार प्राप्त करना चाहता है, शस्त्र-धारण करने में बाधा नहीं डालेगा। समस्त नागरिकों को बिना किसी भेद-भाव के ऐसे किसी मौलिक अधिकार के देने की नीति पर मुझे बड़ी आपत्ति है। उदाहरण के रूप में यदि श्री कामत का प्रस्ताव, कि प्रत्येक व्यक्ति को शस्त्र-धारण का मौलिक अधिकार हो, स्वीकार कर लिया जाये तो हजारों लाखों व्यक्तियों को, जिनको आज जरायम पेशा लोगों में शामिल किया जाता है, शस्त्र-धारण करने का अधिकार होगा। सब तरह के लोगों को, चाहे वे स्वभाव से अपराधी ही हों, शस्त्र-धारण करने का अधिकार की मांग करने का हक हो जायेगा, आप यह तो कह ही नहीं सकते कि इस परादिक द्वारा किसी व्यक्ति को इस कारण शस्त्र-धारण करने का अधिकार नहीं होगा कि वह किसी विशेष वर्ग का है।

***श्री एच.वी. कामतः** यदि डॉ. अम्बेडकर इस परादिक को पूर्ण रूप से स्पष्टतया समझते हैं तो उनको यह अनुभव होगा कि मेरे संशोधन का यह प्रभाव नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इस समय मैं यह बात नहीं मान सकता हूं। मेरे पास अब अधिक समय नहीं है। मैं उस स्थिति को स्पष्ट कर रहा हूं जिसको मसौदा-समिति ने ग्रहण किया है। बात तो यह है कि इस भेदरहित

अधिकार को प्रदान करना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त मेरा निवेदन यह है कि जहां तक शस्त्र-धारण करने का सम्बन्ध है हमें इस बात पर आग्रह नहीं करना चाहिये कि व्यक्ति को शस्त्र-धारण करने का अधिकार हो, वरन् इस बात पर आग्रह करना चाहिये कि व्यक्ति का शस्त्र-धारण करने का कर्त्तव्य है। (**एक माननीय सदस्यः धन्य, धन्य**)। सत्य बात तो यह है कि जो कुछ अधिकार हमें प्राप्त करना चाहिये वह यह है कि जब सद्यस्कृत्यस्थिति उत्पन्न हो, जब युद्ध हो, जब विप्लव हो, जब राज्य की स्थिरता और सुरक्षा संकट में हो उस समय राज्य की रक्षा हेतु राज्य के प्रत्येक व्यक्ति को शस्त्र-धारण करने के लिये आमन्त्रित करने का अधिकार हो। इस बात को हमें मान लेना चाहिये और अनुच्छेद 17 के परादिक द्वारा हमने इस स्थिति को सुरक्षापूर्ण बना दिया है।

***श्री एच.वी. कामतः** (बीच में बोलने के लिये खड़े हुये।)

***उपाध्यक्षः** श्री कामत, आप बाधा न डालिये। आप यह नहीं कह सकते कि मैंने आपको यथेष्ट सुविधा नहीं दी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** वैयक्तिक कानून के प्रश्न के सम्बन्ध में, मेरे विचार से इस विषय पर उस समय पूर्ण और यथेष्ट रूप से वाद-विवाद तथा विचार-विमर्श कर लिया गया था जब कि हमने इस विधान के एक निदेशक सिद्धान्त पर वादानुवाद किया था जो राज्य को एक रूप व्यवहार-संहिता के प्रचलन हेतु प्रयास करने का अधिकार प्रदान करता था। मैं समझता हूं कि इस बात का और आगे तक हवाला देना अनावश्यक है, पर मैं यह कहना चाहता हूं कि यदि विधान में इस प्रकार का रक्षात्मक खण्ड रख दिया गया तो वह भारत के स्मृतिज्ञों को समाज सम्बन्धी किसी भी अधिनियम के बनाने के लिये निर्योग्य बना देगा। इस देश में धार्मिक प्रवृत्ति इतनी प्रबल है कि वह जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त जीवन के प्रत्येक अंग से सम्बन्धित है। ऐसी कोई बात नहीं है जिसका धर्म से सम्बन्ध न हो और यदि वैयक्तिक कानून की रक्षा करना ही है तो मुझे विश्वास है कि समाज सम्बन्धी विषयों में हम जहां हैं वहीं रहेंगे। मैं नहीं समझता हूं कि इस प्रकार की स्थिति को स्वीकार करना सम्भव है। इस कथन में कोई विलक्षणता नहीं है कि अब भविष्य में हमें धर्म की परिभाषा को इस प्रकार सीमित करना चाहिये कि हम विश्वासों तथा उत्सवों से सम्बन्धित कृत्यों से, जो प्रमुखतया धार्मिक हों, आगे न बढ़ें। यह आवश्यक नहीं है कि इस प्रकार के कानून जैसे कि काश्तकारी कानून, उत्तराधिकार सम्बन्धी कानून धर्म द्वारा

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

प्रशासित हों। यूरोप में ईसाई मत है, पर ईसाई मत का यह अर्थ नहीं है कि समस्त संसार के ईसाइयों के लिये या यूरोप के किसी भाग के ईसाइयों के लिये, जिसमें वे रहते हैं, उत्तराधिकार कानून की समान पद्धति हो। ऐसी कोई बात नहीं है। मैं स्वयं यह नहीं समझ पाता कि धर्म का इतना महान् और वृहद् न्याय-क्षेत्र क्यों रखा जाये कि वह सम्स्त जीवन पर छा जाये और उस क्षेत्र में विधान-मण्डल के हस्तक्षेप करने तक में बाधा डाले। आखिरकार यह स्वतन्त्रता हम किसलिये प्राप्त कर रहे हैं? हम इस स्वतन्त्रता को अपनी सामाजिक पद्धति में सुधार करने के लिये प्राप्त कर रहे हैं। हमारी सामाजिक पद्धति बहुत पक्षपातपूर्ण है। बहुत वैषम्य, भेद-विभेद तथा अन्य बातों से पूर्ण है और ये बातें हमारे मौलिक अधिकारों की विरोधिनी हैं। अत: किसी व्यक्ति के लिये वह विचार करना बिल्कुल ही असम्भव है कि राज्य के न्याय-क्षेत्र से वैयक्तिक कानून निकाल दिये जायेंगे। यह कहने के पश्चात् मैं यह संकेत भी करना चाहूंगा कि इस विषय में राज्य की केवल कानून-निर्माण करने की मांग है। राज्य पर यह कर्त्वभार नहीं है कि वैयक्तिक कानूनों को समाप्त कर दिया जाये। यह अधिकार प्रदान करना मात्र है। अत: इस बात से किसी को संशकित नहीं होना चाहिये कि चूंकि राज्य को अधिकार है इसलिये राज्य तुरन्त ही इस प्रकार से इस अधिकार का प्रयोग अथवा प्रवर्त्तन करने लग जायगा जो भारत के मुसलमानों, ईसाइयों अथवा किसी अन्य सम्प्रदाय को आपत्तिजनक प्रतीत हों।

हम सबको याद रखना चाहिये—और मैं उन मुसलमान जाति के सदस्यों को भी इसमें शामिल कर लेता हूं जो इस विषय पर बोल चुके हैं और जिनकी भावनाओं का पर्याप्त आदर किया जा सकता है—कि चाहे प्रभुता को असीम ही क्यों न कहा जाये, वह सचमुच में होती है सर्वदा सीमित और वह इसलिये कि प्रभुता को अपनी शक्ति के प्रयोग में इस बात का विचार रखना पड़ता है कि वह प्रयोग विभिन्न समुदायों की भावनाओं के अनुकूल हो। कोई भी सरकार अपने अधिकार का इस तरह प्रयोग नहीं कर सकती कि मुसलमान सम्प्रदाय भड़क उठे और विद्रोह करने लगे। मेरे विचार से वह एक पागल सरकार ही होगी जो ऐसा करे। परन्तु यह एक ऐसा विषय है जिसका सम्बन्ध अधिकार के प्रयोग से है न कि स्वयं अधिकार से।

श्रीमान्, मेरे मित्र श्री जयपालसिंह ने आदिवासियों के सम्बन्ध में मुझ से कुछ प्रश्न किये हैं। मेरे विचार से जब हम पांचवीं और छठी अनुसूची पर वाद-विवाद करें उस समय इस प्रश्न का उठाया जाना उचित होगा, परन्तु चूंकि उन्होंने इन

प्रश्नों को उठा दिया है और चूंकि जो कठिनाइयां उन्होंने अनुभव की हैं, उनको सुलझाने के लिये उन्होंने विशेषकर मुझ से कहा है, मैं उस विषय पर इस समय विचार प्रस्तुत करता हूं। सभा ने यह जान लिया होगा कि आदिवासियों के सम्बन्ध में हमने विधान के मसौदे में किस स्थिति को ग्रहण किया है। हमने क्षेत्रों की दो श्रेणियां की हैं—अनुसूचित-क्षेत्र और वनजाति-क्षेत्र—वनजाति-क्षेत्र वे क्षेत्र हैं जो केवल आसाम प्रान्त में ही हैं, और अनुसूचित क्षेत्र वे क्षेत्र हैं जो आसाम के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में हैं। ये वास्तव में, भारतीय सरकार एक्ट में हम जिनको "अंशत: वर्जित क्षेत्र" के रूप में प्रयोग करते थे, उनके भिन्न नाम हैं। इससे अधिक और कुछ नहीं हैं। अनुसूचित वनजातियां दोनों में रहती हैं अनुसूचित क्षेत्रों में भी और वनजाति-क्षेत्रों में भी, और अनुसूचित क्षेत्रों की अनुसूचित वनजातियों तथा वनजाति-क्षेत्रों की अनुसूचित जातियों में परस्पर अन्तर यह है: अनुसूचित क्षेत्रों की अनुसूचित वनजातियों पर पांचवीं अनुसूची की कंडिका 5 के प्रावधान लागू होते हैं। इस अनुसूचित के अनुसार संसद् अथवा स्थानीय विधान-मण्डल द्वारा स्वीकृत सामान्य कानून अपने आप लागू हो जाते हैं, यदि गवर्नर इस प्रकार की घोषणा न करे कि अमुक कानून अथवा अमुक कानून का अमुक भाग लागू नहीं होगा। वनजाति क्षेत्र में अनुसूचित वनजाति की स्थिति कुछ भिन्न है। वहां संसद् अथवा स्थानीय विधान-मण्डल द्वारा निर्मित कानून तब तक लागू नहीं होगा जब तक गवर्नर उस कानून को वनजाति क्षेत्रों के लिये प्रसारित न करे। एक पर तो यदि कानून का अपवर्जन न किया जाये तो वह लागू हो जाता है और दूसरे पर यदि कानून का प्रसार न किया जाये तो वह लागू नहीं होता। स्थिति यह है।

अनुसूचित वनजातियों के प्रश्न पर यह पूछा जा सकता है कि मैंने "आदिवासी" के स्थान में "अनुसूचित" शब्द क्यों रखा। इस बात पर मेरा उत्तर यह है। जैसा कि मैंने कहा है "अनुसूचित वनजाति" शब्द का एक निश्चित अर्थ है क्योंकि वह वनजातियों को क्रमबद्ध करता है जैसा कि आप दोनों अनुच्छेदों में पायेंगे। "आदिवासी" शब्द वास्तव में एक सामान्य शब्द है जिसका कोई विशिष्ट कानूनी अर्थ नहीं है। यह कुछ-कुछ अछूत शब्द के समान है। इसका कोई निश्चित कानूनी अर्थ नहीं है। इसीलिये सन् 1935 ई. के भारतीय सरकार के अधिनियम में यह आवश्यक समझा गया कि "अछूत" शब्द का कुछ कानूनी अर्थ किया जाये और यही सुविधाजनक समझा गया कि उन जातियों को क्रमबद्ध कर दिया जाये, जो विभिन्न प्रान्तों तथा क्षेत्रों में वहां के रहने वालों द्वारा अछूत समझी जाती हैं। आदिवासियों के सम्बन्ध में भी यही प्रश्न उठ सकता है। आदिवासी कौन हैं? और यह प्रश्न संगत होगा क्योंकि इस विधान द्वारा हम

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

आदिवासियों को कुछ अधिकार, कुछ विशेषाधिकार प्रदान कर रहे हैं। यदि यह विषय न्यायालय में प्रस्तुत होगा तो उसके लिये आदिवासी कौन हैं, इसकी ठीक-ठीक परिभाषा होना आवश्यक है, इसलिये यह निश्चित किया गया कि एक और श्रेणी अथवा पदावली "अनुसूचित वनजाति" के नाम से निर्मित की जाये और उस शीर्षक के अन्तर्गत आदिवासियों को रखा जाये। अब यदि मेरे विचार से श्री जयपालसिंह उन अनेकों जातियों की तुलना, जिनका सामान्यतया आदिवासियों के रूप में वर्णन किया गया है, उन जातियों से करें जिनको अनुसूचित वनजातियों के शीर्षक के अन्तर्गत सूचीबद्ध किया गया है, तो उनको ऐसा उदाहरण कठिनाई से मिलेगा कि किसी जाति को, जिसको सामान्यतया आदिवासियों के रूप में स्वीकार कर लिया गया है, इस अनुसूची में सम्मिलित नहीं किया गया हो। मैं मानता हूं कि हो सकता है कि कहीं-कहीं ऐसी त्रुटि हो गई हो कि कोई जाति, जो आदिवासी न हो, उसको भी सम्मिलित कर लिया गया हो। ऐसा भी हो सकता है कि कोई जाति जो कि वास्तव में आदिवासी है उसको सम्मिलित न किया गया हो, परन्तु ऐसी दशा के लिये जब कि किसी जाति को, जिसको अब तक आदिवासी समझा गया है, अनुसूचित वनजातियों की सूची में न रखा गया हो, तो हमने एक संशोधन रख दिया है, जिसके द्वारा स्थानीय सरकार को यह अधिकार होगा कि वह अधिसूचना द्वारा किसी उस विशेष जाति को, जिसको अब तक सम्मिलित नहीं किया गया है अनुसूचित वनजातियों की सूची में सम्मिलित कर ले। मैं समझता हूं कि इस बात से मेरे मित्र श्री जयपालसिंह को संतोष हो जायेगा।

उन्होंने एक और प्रश्न मुझसे पूछा है और वह यह है। मान लीजिये कि अनुसूचित क्षेत्र निवासी कोई अनुसूचित वनजाति का सदस्य अथवा वनजाति क्षेत्र निवासी कोई अनुसूचित वनजाति का सदस्य भारत के किसी अन्य भाग में, जो कि अनुसूचित तथा वनजाति दोनों क्षेत्रों से बाहर है, निवास करने जाता है तो क्या वह उस स्थानीय सरकार से, जिसके अधिकार-क्षेत्र में वह निवास करता है, उन्हीं विशेष अधिकारों की मांग कर सकेगा जिनके प्राप्त करने का अधिकार उसे तब होता है जब वह अनुसूचित क्षेत्र अथवा वनजाति क्षेत्र में निवास करता है, इस प्रश्न का उत्तर देना मेरे लिये कठिन हैं। यदि इस विषय का आन्दोलन उन क्षेत्रों में किया जाये, जिनसे ऐसे विषयों का निर्णय सम्बद्ध है, तो हम अवश्य ही इस प्रश्न का कुछ उत्तर इस विधान में किसी खण्ड के रूप में दे सकेंगे। परन्तु जहां तक वर्तमान विधान का प्रश्न है, अनुसूचित वनजाति का कोई सदस्य यदि वह

अनुसूचित क्षेत्र अथवा वनजाति क्षेत्र से पृथक् हो जाता है तो उसे वे विशेषाधिकार नहीं मिलेंगे जिनका वह अनुसूचित क्षेत्र अथवा वनजाति क्षेत्र में रहते हुये अधिकारी हैं। जहां तक मैं सोच सकता हूं, यह असम्भव है कि वनजाति क्षेत्रों अथवा अनुसूचित क्षेत्रों में लागू होने वाले प्रावधानों का इन क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में प्रवर्त्तन किया जाये।

श्रीमान्, मैं आशा करता हूं कि वक्ताओं द्वारा उठाये गये समस्त प्रश्नों का, जब कि वे इस खण्ड के संशोधन पर बोले, मैंने उत्तर दे दिया है और मैं आशा करता हूं कि मेरे उत्तर से उनको संतोष हो गया होगा कि उनकी समस्त शंकाओं का निवारण हो गया। मैं आशा करता हूं कि संशोधित रूप में यह अनुच्छेद सभा द्वारा स्वीकार किया जायेगा।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं उन संशोधनों पर, जो पेश हो चुके हैं और जिनकी संख्या 30 है, एक-एक करके मत लूंगा। संशोधन संख्या 412 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'13—लोक-व्यवस्था अथवा लोक-शील के अधीन नागरिकों को—

(क) भाषण और अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य;

(ख) मुद्रण स्वातन्त्र्य;

(ग) पार्षद् और संघ बनाने के स्वातन्त्र्य;

(घ) शांतिपूर्वक निरायुध सम्मेलन करने के स्वातन्त्र्य;

(ङ) डाक, तार और टेलीफोन की सूचना को गुप्त रखने की प्रत्याभूति दी जाती है।

13-क—इस गणराज्य के समस्त नागरिक इस सम्पूर्ण गणराज्य के अन्तर्गत पर्यटन-स्वातन्त्र्य का उपभोग करेंगे। प्रत्येक नागरिक को जहां वह चाहे प्रवास करने तथा बसने का अधिकार है। आदिवासी वनजातियों तथा पिछड़े हुये वर्गों की रक्षा हेतु तथा लोक-रक्षा और लोक-शांति के लिये संधानीय कानून के अन्तर्गत अथवा उसके द्वारा आयंत्रणों का आरोप किया जा सकता है।' "

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 415 । मेरे ख्याल से इसको डॉ. अम्बेडकर ने मान लिया है।

[उपाध्यक्ष]

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) में से 'इस अनुच्छेद के अन्य प्रावधानों के अधीन रहते हुये' शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 416 का दूसरा भाग। इस संशोधन के प्रथम भाग को रोक दिया गया है चूंकि संशोधन संख्या 415 स्वीकार किया जा चुका है।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) में 'अधिकार होगा' शब्दों के पश्चात् 'और उनको इन अधिकारों की प्रत्याभूति दी जाती है' शब्द जोड़ दिये जायें।"

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 420 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) के पूर्व निम्न नवीन उपखण्ड जोड़ दिया जाये:

'(क-1) विचार स्वातंत्र्य का;'"

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 421 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में 'अभिव्यक्ति' शब्द के पश्चात् 'विचार और उपासना; मुद्रण और प्रकाशन' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 422 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) के आरम्भ में 'मुद्रण तथा मंच सम्बन्धी' शब्द जोड़ दिये जायें।"

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 428 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ग) के आरम्भ में 'किसी विध्यनुकूल प्रयोजनार्थ' शब्द बढ़ा दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 429 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (घ) में 'राज्यक्षेत्र में' शब्दों के पश्चात् 'विध्यनुकूल रीति से' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 430 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ङ) में 'किसी भाग में' शब्दों के पश्चात् 'विध्यनुकूल रीति से' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 432 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (छ) के आरम्भ में 'विध्यनुकूल रीति से' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** सूची 2 के संशोधन संख्या 79 द्वारा परिवर्तित रूप में संशोधन संख्या 438 ।

[उपाध्यक्ष]

प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन सूची के संशोधन संख्या 438† के स्थान में निम्न संशोधन रखा जाये कि:

'अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (छ) के पश्चात् निम्न नवीन उपखण्ड जोड़ दिया जाये:

(ज) शस्त्र रखने और धारण करने का।'"

और खण्ड (6) के पश्चात् निम्न नवीन खण्ड जोड़ दिया जाये :

"(7) उक्त खण्ड के उपखण्ड (ज) की किसी बात से लोक-व्यवस्था, लोक-शान्ति और लोक-अक्षोभ के हित में उक्त खण्ड द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रयोग पर आयन्त्रणों का आरोप करने वाली किसी वर्तमान विधि के प्रवर्त्तन पर प्रभाव अथवा किसी विधि के बनाने में राज्य के लिये अवरोध न होगा।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 440 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (छ) के पश्चात् निम्न नवीन उपखण्ड जोड़ दिये जायें :

(ज) जिस समुदाय अथवा सम्प्रदाय में वह है अथवा जिसमें होना वह मानता है उस समुदाय अथवा सम्प्रदाय की वैयक्तिक विधि के पालन करने का;

(झ) वैयक्तिक स्वातन्त्र्य का और यदि इस स्वतन्त्रता में कमी की जाती है तो किसी सक्षम न्यायालय द्वारा जांच करने का।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 502 ।

---

†अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) उपखण्ड (छ) के पश्चात् निम्न उपखण्ड जोड़ दिया जाये :

"(ज) संधानीय विधि के आधीन अथवा उसके द्वारा निर्मित आनियमों अथवा आरक्षणों के अनुसार शस्त्र रखने और धारण करने का।"

प्रस्ताव यह है कि :

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (6) के पश्चात् निम्न नवीन खण्ड जोड़ दिये जायें:

'(7) इस अनुच्छेद के (2) से (6) तक के खण्डों की किसी बात से इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (ज) के अन्तर्गत प्रत्याभूत किये गये अधिकारों पर प्रभाव नहीं पड़ेगा।

'(8) (2) से (6) तक के खण्डों की किसी बात से इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (झ) के अन्तर्गत प्रत्याभूत किये गये अधिकारों पर प्रभाव नहीं पड़ेगा।

'(9) इस विधान के लागू होने के पश्चात् किसी भी वर्तमान विधि का प्रवर्त्तन उस सीमा तक नहीं होगा जिस सीमा तक कि वह इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (झ) के अन्तर्गत प्रत्याभूत किये गये अधिकार के विरुद्ध प्रभाव डालती हो और संसद् अथवा किसी राज्य द्वारा कोई ऐसी विधि पारित नहीं की जायेगी जो इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (झ) के अन्तर्गत प्रत्याभूत किये गये अधिकार के विरोध में प्रभाव डाले।'"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 445 । मैं एक बात समझा दूं। माननीय सदस्यों ने ध्यान दिया होगा कि मैं संशोधनों को उस क्रम से ले रहा हूं जिस क्रम से वे पेश किये गये थे। इसी कारण संख्याक्रम विषम है। संशोधन संख्या 445 ।

प्रस्ताव यह है कि :

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के पश्चात् निम्न नवीन खण्ड जोड़ दिया जाये: 'व्यक्ति स्वातन्त्र्य की प्रत्याभूति की जाती है। कानून की उचित विधि के अतिरिक्त अन्य किसी विधि के अनुसार न तो किसी व्यक्ति को प्राणों से वंचित किया जायेगा और न उसे गिरफ्तार किया जायेगा या हिरासत में रखा जायेगा या कैद किया जायेगा और न किसी व्यक्ति को कानून-समता से अथवा भारत के राज्य-क्षेत्र में कानूनों के समरक्षण से वंचित किया जायेगा।'"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 447 ।

[उपाध्यक्ष]

प्रस्ताव यह है कि :

"अनुच्छेद 13 के (2) से (6) तक के खण्डों को निकाल दिया जाये और खण्ड (1) के साथ निम्न परादिक जोड़ दिया जाये:

'यदि कोई नागरिक उपरोक्त अधिकार के प्रयोग करने में राज्य की प्रतिभूति को संकट में न डाले, साम्प्रदायिक वैमनस्य न बढ़ाये अथवा देश की शांति और अक्षोभ में विघ्न डालने के लिये कोई कार्य न करे।'"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** सूची 4 के संशोधन संख्या 86 द्वारा परिवर्तित रूप में संशोधन संख्या 453 । मेरे ख्याल से डॉ. अम्बेडकर ने इसको मान लिया है।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (2) के स्थान में निम्न खण्ड रखा जाये:

'इस अनुच्छेद के खण्ड (1) उपखण्ड (क) की किसी बात से अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि अथवा शिष्टता या शील पर आघात या राज्य की प्रतिभूति का जर्जर करने वाली अथवा उसकी जड़ उखाड़ने वाली किसी बात सम्बन्धी किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर, जहां तक उसका सम्बन्ध है, प्रभाव अथवा किसी विधि के बनाने में राज्य के लिये अवरोध, न होगा।'"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 449 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के पश्चात् निम्न नवीन खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(1-क) उपखण्ड (क) की किसी बात से राजद्रोह अथवा षड्यन्त्र सम्बन्धी विधि-निर्माण करने में किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा राज्य के लिये अवरोध, न होगा।' "

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष :** संशोधन संख्या 450 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (2), (3), (4), (5) और (6) को निकाल दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 451 का दूसरा विकल्प।

"खण्ड (2), (3), (4), (5) और (6) के आरम्भ में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें :

'अनुच्छेद 8 के प्रावधानों के आधीन तथा उनका विरोध न करते हुये'"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 452 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (2), (3), (4) और (5) को निकाल दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 458 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (2) में 'राजद्रोह' शब्द के पश्चात् 'साम्प्रदायिक उत्तेजना' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 465 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के (3) और (4) खण्ड को निकाल दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 478 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 का खण्ड 5 निकाल दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** सूची 1 के संशोधन संख्या 49 द्वारा परिवर्तित किये गये रूप में संशोधन संख्या 454 । मेरे ख्याल से डॉ. अम्बेडकर ने इस संशोधन को मान लिया है।

प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन सं. 454† का उल्लेख देते हुये:—

(1) अनुच्छेद 13 के (3), (4), (5) और (6) खण्डों में 'प्रवर्त्तन पर' शब्दों के पश्चात् 'जहां तक उसका आरोप होता है' शब्द जोड़ दिये जायें।

(2) अनुच्छेद 13 के खण्ड (6) में 'विशेषतया' शब्द के पश्चात् 'उक्त खण्ड की किसी बात से विनिधान करने वाली अथवा किसी प्राधिकारी को विनिधान करने का अधिकार देने वाली किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव अथवा किसी विधि के बनाने में राज्य के लिये अवरोध न होगा' शब्द जोड़ दिये जायें।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के (3), (4), (5) और (6) खण्डों में 'आयन्त्रणों' शब्द के पूर्व 'युक्तियुक्त' शब्द जोड़ दिया जाये।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 485 ।

---

†अनुच्छेद 13 के (2), (3), (4), (5) और (6) खण्डों में से "किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा" शब्दों को निकाल दिया जाये।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (5) में से 'किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा' शब्दों को निकाल दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 467 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"(1) अनुच्छेद 13 के खण्ड (3) में 'आयन्त्रणों' शब्द के पूर्व 'किसी नियत काल के लिये' शब्द जोड़ दिये जायें।"

मेरे विचार से स्वीकार करने वालों का पक्ष प्रबल है। परन्तु निर्णय सम्बन्धी अन्तिम घोषणा करने के पूर्व मैं यह बता दूं कि कुछ भ्रम-सा हो गया है। मैं संशोधन को पढ़ूं। इस संशोधन को श्री श्यामानन्दन सहाय ने पेश किया था।

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (3) में 'आयन्त्रणों' शब्द के पूर्व 'किसी नियत काल के लिये' शब्द जोड़ दिये जायें।"

प्रस्ताव यह है कि:

मुझे ठीक याद है कि अनेकों व्यक्ति इसके विरुद्ध बोले थे। मैं फिर इस संशोधन पर मत ले रहा हूं।

संशोधन संख्या 467 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (3) में 'आयन्त्रणों' शब्द के पूर्व 'किसी नियत काल के लिये' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** मैं विश्वास करता हूं कि भविष्य में माननीय सदस्य अपना निर्णय प्रकट करने में अधिक सावधान रहेंगे।

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधन संख्या 474 पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (4) में 'नियन्त्रणों' शब्द के पूर्व 'किसी नियत काल के लिये' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 476 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (4) में 'जन-सामान्य' शब्द के स्थान में लोक-व्यवस्था अथवा लोक-शील' शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 483 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (5) में 'वर्तमान विधि के' शब्दों के पश्चात् 'जो अनुच्छेद 8 के प्रावधानों के मूल अर्थ के विरुद्ध न हो' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधन संख्या 485 के द्वितीय भाग पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (5) में 'राज्य' शब्द के स्थान में 'संसद्' शब्द रखा जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 489 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (5) में 'जन-सामान्य के हित में' शब्दों के पश्चात् आये हुये 'अथवा किसी आदिवासी जाति के हित रक्षार्थ' शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 491 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (5) में 'आदिवासी' शब्द के स्थान में 'अनुसूचित' शब्द रखा जाये।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 497 ।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (6) में 'लोक-व्यवस्था, लोक-शील और लोक-स्वास्थ्य' शब्दों के स्थान में 'जन-सामान्य' शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधन संख्या 500 पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (6) के पश्चात् निम्न नवीन खण्ड जोड़ दिया जाये:

'किसी भी व्यक्ति के लिये जो हृष्ट-पुष्ट और पूर्ण स्वस्थ है, चाहे वह प्राप्त वयस्क हो चाहे अवयस्क, भिक्षा-वृत्ति का पूर्णतया निषेध किया जाता है और इस प्रकार का कोई भी कर्म विधि-अनुसार दण्डनीय होगा। '"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि :

"विभिन्न स्वीकृत संशोधनों द्वारा अनुच्छेद 13 को जो रूप हो जाता है उस रूप में वह विधान का अंग बने।"

संशोधित रूप में अनुच्छेद 13 स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 13 विधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 14

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 14 पर आते हैं।

(संशोधन संख्या 504 पेश नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामत:** 13-क अर्थात् सूची 5 के संशोधन 89, 90 और 92 का क्या हुआ?

***उपाध्यक्ष:** उसको रोक लिया गया है। मैं संशोधन संख्या 504 का उल्लेख कर रहा हूं।

[उपाध्यक्ष]

अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 14 विधान का अंग बने।"

माननीय सदस्यों को एक सूची दी गई है जिसमें उस विधि की ओर संकेत किया गया है जिसका मैं इस सभा की कार्यवाही संचालन करने के लिये विचार रखता हूं। शाब्दिक होने के कारण संशोधन संख्या 505 को रखने की आज्ञा नहीं दी गई। 506 पेश किया जा सकता है।

***पण्डित ठाकुरदास भार्गव:** क्या मैं यह संकेत करने की स्वतन्त्रता का उपभोग कर सकता हूं कि मेरा संशोधन (संख्या 505) केवल शब्दिक ही नहीं है? वह वास्तविक रूप में संशोधन भी है।

***उपाध्यक्ष:** तो इसकी व्यवस्था मैं बाद में दूंगा। श्री नज़ीरुद्दीन अहमद अपना भाषण देंगे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 14 के खण्ड (1) में 'उससे अधिक' शब्दों के पश्चात् 'अथवा उससे अन्य प्रकार का' शब्द बढ़ा दिये जायें।"

श्रीमान्, खण्ड (1) में यह व्यवस्था है—मैं केवल प्रमुख भाग को उद्धृत कर रहा हूं–

"कोई व्यक्ति उससे अधिक दण्ड का पात्र न होगा जो उस अपराध के करने के समय प्रवृत्त विधि के अधीन दिया जा सकता है।"

किसी व्यक्ति को जितना दण्ड मिलना चाहिये उससे अधिक दण्ड दिये जाने से यह खण्ड उसकी रक्षा करता है। मैंने 'उससे अधिक' शब्दों के पश्चात् 'अथवा उससे अन्य प्रकार का' दण्ड जो कि आरोपित किया जा सके शब्द बढ़ा देने का प्रयत्न किया है। बहुत से अभियोगों में केवल आर्थिक दण्ड प्रावहित है। मान लीजिये कि किसी व्यक्ति पर एक लाख रुपया दण्ड किया जाता है। पुनर्विचार-न्यायालय इस दण्ड को न्यायालय के उठने के समय तक के कारावास में परिणत कर सकता है। इससे यह प्रावधान भंग हो जायेगा क्योंकि जहां केवल आर्थिक दण्ड प्रावहित है वहां इस आधार पर कारावास का दण्ड दिया जा सकता है कि आर्थिक दण्ड से यह अधिक नहीं है। मेरा संशोधन न्यायालय के अधिकारों

को केवल दण्ड की अवधि को ही नहीं बल्कि दण्ड के प्रकार को भी सीमित करने का प्रयास करता हूं। दण्ड कई प्रकार के हैं—आर्थिक दण्ड, कारावास, कोड़े मारना, हरण और फांसी तथा अन्य दण्ड और जहां किसी एक विशेष प्रकार का दण्ड प्रावहित हैं वहां आप उसके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का दण्ड न दें। संक्षेप में इस संशोधन का यह प्रभाव है। जहां केवल कोड़े मारने का दण्ड प्रावहित है वहां आप आर्थिक दंड नहीं दे सकते। जहां केवल आर्थिक दंड की व्यवस्था है वहां आप कारावास नहीं दे सकते हैं अथवा कोड़े नहीं लगा सकते हैं अथवा जायदाद ज़ब्त नहीं कर सकते हैं। जहां केवल चल सम्पत्ति के ज़ब्त करने की व्यवस्था है वहां आप अचल सम्पत्ति को ज़ब्त कर सकते हैं। जहां किसी अपराध के लिये वस्तुओं के ज़ब्त करने की दण्ड-व्यवस्था है वहां आप उनके अतिरिक्त अन्य चीज़ों को ज़ब्त नहीं कर सकते हैं। अतः जिस प्रकार के अधिकार खण्ड में दिये गये हैं यदि हम उनको न्यायालय को सौंप दें तो इससे न्यायालय को उन सज़ाओं के देने का अधिकार मिल जाता है जो विधि द्वारा संमोदित नहीं हैं। यदि खण्ड (1) को रखा ही जाता है तो न्यायालय के अधिकारों को सीमित कर देना चाहिये कि वह उसी वर्ग के प्रावहित दण्ड की व्यवस्था करे। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस खण्ड में किसी प्रकार की कमी अथवा भूल रह गई है जिसकी पूर्ति कर देनी चाहिये।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 505 के दूसरे भाग को मैं पेश करने की आज्ञा दे सकता हूं। पण्डित ठाकुरदास भार्गव!

***पण्डित ठाकुरदास भार्गवः** श्रीमान् मैं प्रस्ताव रखता हूं किः

> "अनुच्छेद 14 के खण्ड (1) में 'under the law at the time of the commission' शब्दों के स्थान में 'under the law in force at the time of the commission' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, यदि आप कृपया अनुच्छेद 307 में दी हुई व्याख्याओं में 'प्रवृत्त विधि' (law in force) की परिभाषा देखें तो यह विदित होगा कि 'विधि' और "प्रवृत्त विधि" के भिन्न-भिन्न अर्थ हैं। साथ ही साथ चूंकि अनुच्छेद के पूर्वभाग में 'प्रवृत्त विधि' शब्द आते हैं तो इस सान्निध्य में यह आवश्यक अथवा उचित है कि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाये। मैं केवल यही निवेदन करना चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 507, 508 और 511 समानार्थी हैं। सबसे अधिक व्यापक संशोधन 507 है, उसको पेश किया जा सकता है।

(संशोधन संख्या 507, 508 और 511 पेश नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 509 और 510 समानार्थी हैं और साथ-साथ पेश किये जा सकते हैं। वे श्री नज़ीरुद्दीन के नाम से हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 14 के खण्ड (2) के आरम्भ में 'सन् 1898 ई. की दण्ड कार्य-प्रणाली संहिता में दी हुई विधि के अतिरिक्त अन्य किसी विधि द्वारा' शब्द जोड़ दिये जायें।"

श्रीमान्, अपने मन में बहुत ही चिन्तित होकर मैं इन संशोधनों को पेश कर रहा हूं। प्रथम चिन्ता तो यह है कि मैं अपनी समय-सीमा का अतिक्रमण न कर जाऊं, दूसरी चिन्ता यह है कि मेरे पीछे अनेकों निरीक्षक और शक्तिशाली व्यक्ति लगे हुये हैं और मुझे भय है कि न मालूम किस समय औचित्य प्रश्न उठा दिया जाये और तीसरी चिन्ता यह है कि मेरे विरुद्ध माननीय सदस्यों द्वारा 'नहीं', 'नहीं' की पुकार मचाई जायेगी और यह पुकार तालियों की गड़गड़ाहट में गूंज उठेगी और उस गूंज में मेरी अशक्त 'हां' दब जायगी।

इसके बाद एक कठिनाई और है कि जो बातें मैं रख रहा हूं उनकी ओर मसौदा-समिति के माननीय सभापति को ध्यान देने के लिये मुझे निवेदन करना है। मैं अपनी बातों को पूर्णतया विषय-संगत रखने का प्रयत्न करूंगा।

श्रीमान्, जिन शब्दों के बढ़ाने का मैं प्रयास कर रहा हूं, वे दण्ड कार्य-प्रणाली के एक मुख्य सिद्धान्त से सम्बन्ध रखते हैं। खण्ड (2) जिसमें मैं संशोधन करने का प्रयास कर रहा हूं इस प्रकार है:

"(2) कोई व्यक्ति उसी अपराध के लिये एक बार से अधिक दण्डित न किया जायेगा।"

बड़ी पवित्र भावनावश इस खण्ड को रखा गया है; पर दण्ड विधि के दृष्टिकोण से विचारते हुये इसमें अनेकों त्रुटियां हैं।

खण्ड (2) जल्दबाजी में बनाया हुआ-सा प्रतीत होता है। ऐसे उदाहरण हैं जिनमें कि किसी व्यक्ति को उसी अपराध के लिये विधिपूर्वक दो बार दण्डित

किया जा सकता है और संगत विधि का उल्लेख करते हुये मैं उन परिस्थितियों का वर्णन करूंगा। इस विषय से सम्बन्धित सिद्धान्त दण्ड कार्य-प्रणाली संहिता की धारा 406 की उपधारा (1) में मिलता है। उसमें यह बात दी है। दो बार दण्डित करने की विधि बनाई जा चुकी है।

श्री टी.टी. कृष्णमाचारी: श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है। इस सभा के अधीनस्थ विधान-मण्डल द्वारा निर्मित अधिनियमों का उल्लेख करते हुये क्या इस सभा का कोई माननीय सदस्य संशोधन पेश कर सकता है? संशोधन स्वयं नियम-विरुद्ध है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** अन्य कोई भी बात नियम-विरुद्ध हो सकती है पर यह संशोधन नियम-विरुद्ध नहीं हो सकता। अनुच्छेद 9 में तथा अन्य स्थलों पर हमने "वर्तमान विधियों" अर्थात् अधीनस्थ विधान-मण्डलों के अधिनियमों का उल्लेख किया है तथा उनकी रक्षा की है। केवल विचार-सान्निध्य हेतु मैं दण्ड-कार्य-प्रणाली संहिता का उल्लेख कर रहा था। मैं यह नहीं कह सकता कि धारा 403 अथवा उसमें निहित कोई सिद्धान्त, अथवा कोई अन्य सुपुष्ट सिद्धान्त ही नहीं वरन् कोई भी पुष्ट से पुष्ट बात इस सभा पर लागू हो सकती है और वह इसलिये कि यह सम्पूर्ण सत्ताधारी सभा है।

मैं तो दण्ड-कार्य-प्रणाली के कुछ सिद्धान्तों को विचार-विमर्श के लिये रख रहा था। मैंने यह सुझाव कभी नहीं रखा कि वे इस सभा पर लागू होंगे, केवल यही कहा कि वे विचारणीय हैं।

मैं सामान्य सिद्धान्तों के उदाहरण प्रस्तुत करूंगा क्योंकि मैं समझता हूं कि श्री कृष्णमाचारी को वे अधिक मान्य होंगे। ऐसा बहुधा होता है कि किसी व्यक्ति को उस न्यायालय द्वारा दण्डित किया जाता है, जिसके अधिकार क्षेत्र में उस दण्ड का देना नहीं होता। फौजदारी-अदालतों में यह एक सामान्य बात है कि पुनर्विचार में न्यायाधीश, अथवा उच्च न्यायालय, अथवा प्रीवी कोर्ट—और वर्तमान काल में संधानीय न्यायालय और भविष्य में भावी सर्वोच्च न्यायालय को ऐसा लगे तथा विश्वास हो कि अपराध-निर्णय क्षेत्राधिकार से बाहर किया गया है, परन्तु इस अरसे में उस व्यक्ति पर दोष प्रमाणित हो जाता है। यदि आप यह कहें कि उस पर दुबारा दोष प्रमाणित नहीं किया जा सकता तो पुनर्विचार न्यायालयों के दुबारा जांच करने के आदेश पूर्णतया असंगत हो जायेंगे। यदि किसी अधिकार-क्षेत्र-विहीन

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

मजिस्ट्रेट अथवा न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति की जांच हो जाती है और यदि उसको दण्ड दे दिया जाता है तो वह पहला दण्ड हुआ।

और फिर यदि यह विदित होता है कि उस न्यायालय को मुकद्दमा करने का अधिकार नहीं था तो बहुधा यह होता है कि मुकद्दमा फिर से होता है। परन्तु यदि आप खण्ड (2) के सिद्धान्त-अनुसार अधिनियम बना दें कि उसी अपराध के लिये किसी व्यक्ति को एक बार से अधिक दण्डित नहीं किया जायेगा तो इसका प्रभाव यह होगा कि यदि किसी अधिकार-क्षेत्र-युक्त न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति को दण्डित किया जाता है परन्तु जांच में कोई कमी रह गई है या अधिकार-क्षेत्र-युक्त न्यायालय की कोई त्रुटि है, तो फल यह होगा कि और आगे जांच करना बिल्कुल बन्द हो जायेगा। फौजदारी अदालतों में दोष प्रमाणित करने के पश्चात् दुबारा जांच होना प्रतिदिन की सामान्य सी बात है।

कभी कभी, श्रीमान्...।

(कुछ ठहर कर)

श्रीमान्, मैं माननीय सदस्य—मसौदा-समिति के सभापति—का ध्यान पूर्णतया अपनी ओर आकर्षित करना चाहता हूं, अन्यथा यह तर्क व्यर्थ होगा। यदि वे 'नहीं' कह देंगे तो सारा भवन उनके साथ गूंज उठेगा।

***उपाध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर, श्री नज़ीरुद्दीन चाहते हैं कि आप उनकी ओर अपना पूरा-पूरा ध्यान दें। वे कहते हैं कि यदि आप 'नहीं' कह देंगे तो सारी सभा 'नहीं' कह देगी। (*हंसी*)

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** जो बात मैं कह रहा था वह एक सामान्य महत्त्व की बात है। बात यह है कि यदि किसी न्यायालय द्वारा कोई व्यक्ति दोषी ठहराया जाता है तो वह प्रथम दोष-निर्णय है—चाहे जांच में कोई कमी ही हो। अपराधी सेशन कोर्ट में पुनर्विचार के लिये प्रार्थना करता है। वहां यह विदित होता है कि जांच में कोई कमी है अथवा वह उस न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र में नहीं आता था। वह दुबारा जांच करने का आदेश दे सकती है, परन्तु खण्ड (2) दुबारा जांच करने में बाधा डालेगा क्योंकि ऐसा करने से दुबारा दोष-निर्णय होगा। किसी न्यायालय द्वारा अपराधी का दोष-निर्णय प्रथम बार किया जा सकता है, पर यह

खण्ड किसी उच्च न्यायालय को दुबारा जांच करने के आदेश देने से रोकेगा। यह एक साधारण से साधारण उदाहरण है। 'केवल दोषी न ठहराया जायेगा' यह सिद्धान्त नहीं होना चाहिये, वरन् यह सिद्धान्त होना चाहिये कि यदि किसी क्षेत्राधिकार-युक्त न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति को दोष-मुक्त ठहराया जाये अथवा दोषी ठहराया जाये और यदि दोष-निर्णय या दोषमुक्ति प्रभावी है, तो उसकी दुबारा जांच नहीं हो सकती। वास्तव में प्रथम दोष-निर्णय महत्त्वपूर्ण नहीं है; महत्त्वपूर्ण तो दोष-निर्णय का अन्तिम रूप में वैध तथा लागू होना है जिसका सम्मान करना चाहिये और अन्तिम होना केवल दोष-निर्णय से ही संलग्न न हो, वरन् दोषमुक्ति से भी संलग्न हो। आप उस व्यक्ति के सम्बन्ध में क्या विचार करेंगे जो उचित जांच के पश्चात् अन्त में दोषमुक्त कर दिया जाता है और जब कि वह दोषमुक्ति टाली नहीं जा सकती, अतएव वह अन्तिम और बन्धनकारी हो जाती है। इसके सम्बन्ध में आप कुछ भी नहीं कहते हैं। आप केवल यही कहते हैं कि किसी व्यक्ति को उसी अपराध के लिये दुबारा दण्डित नहीं किया जाना चाहिये। दोषमुक्त व्यक्ति भी दुबारा जांच का पात्र नहीं होगा। इस सम्बन्ध में तो आप कुछ भी नहीं कहते हैं, केवल अपना ध्यान दुहरे दण्ड की ओर लगाये हुये हैं। मैं निवेदन करता हूं कि तत्कथित दुहरे दण्ड का सिद्धान्त ही पूरा नहीं है और न वह पूर्ण चित्र ही उपस्थित करता है। उस व्यक्ति का उदाहरण लीजिये, जिसे एक क्षेत्राधिकार-विहीन मजिस्ट्रेट द्वारा 50 रुपये का आर्थिक दण्ड किया जाता है और फिर वह पुनर्विचार-न्यायालय में प्रार्थना करता है। खण्ड (2) के कारण पुनर्विचार-न्यायालय किसी भी पारिभाषिक आधार पर, यहां तक कि इस आधार पर भी कि उक्त न्यायालय का क्षेत्राधिकार न था, उस अभियोग की दुबारा जांच नहीं करा सकता।

उस प्रसंगवर्त्ती धारा को, जिसके कारण सभा के एक गण्यमान्य सदस्य श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के मन में सन्देह हुआ है, मैं उनकी अनुमति, आपकी अनुमति तथा सभा की अनुमति से पढ़ कर सुनाऊंगा। यह बात नहीं कि वह बन्धनकारी हो परन्तु यह एक स्पष्ट और निश्चित विवेक है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ियों से अब तक चला आया है। धारा 403 की उप-धारा (1) में कहा गया है:

> "किसी व्यक्ति की किसी क्षेत्राधिकार-युक्त न्यायालय द्वारा किसी अपराध के सम्बन्ध में यदि एक बार जांच कर ली जाती है और उसको उस अपराध के लिये दोषी अथवा निर्दोष ठहराया जाता है, तो जब तक वह

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

दोष-निर्णय अथवा दोष-मुक्ति प्रवृत्त है तब तक उस व्यक्ति की उसी अपराध के लिये दुबारा जांच न होगी।"

श्रीमान्, मैं समझता हूं कि यही उचित रूप है। यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि दण्ड-कार्य-प्रणाली-संहिता अन्याय के विरुद्ध यथेष्ट रूप में अभिरक्षण करती है, पर यदि आप यहां इसको पुर:स्थापन करेंगे तो यह न्याय्य अधिकार है और हम यह व्यवस्था कर चुके हैं कि किसी भी मूलाधिकार के उल्लंघन के लिये न्यायालय में कार्यवाही की जा सकेगी और इसके विरुद्ध जितनी वर्तमान विधियां हैं वे सब रद्द हो जायेंगी, और इस कारण इसका प्रभाव यह होगा कि उस लाभदायक विधि का अन्त हो जायेगा जो धारा 403 की उपधारा (1) में निर्धारित है। मेरा निवेदन है कि इस खण्ड पर बड़ी सावधानी से विचार करना चाहिये और यदि आवश्यक हो तो इसका फिर से मसौदा बनाया जाये।

मैं निवेदन करता हूं कि ऐसी दशाओं में उसी अपराध के लिये दोहरी सजा वास्तव में अन्यायपूर्ण नहीं है। ऐसी दशाओं में होता यह है कि जितनी सज़ा काट ली जाती है या भुगत ली जाती है, उतनी सज़ा दुबारा जांच में दी गई अन्तिम सज़ा में लगा ली जाती है। इस संशोधन का यही प्रभाव है।

***उपाध्यक्ष:** क्या आप संशोधन 509 पेश करना चाहते हैं?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** नहीं श्रीमान्, वह इसी सिद्धान्त से सम्बन्ध रखता है और मैं उसे पेश करना नहीं चाहता।

***उपाध्यक्ष:** पिछले दो दिनों के अनुभव से मुझे यह विदित हुआ कि अनेकों सदस्यों के लिये प्रात: साढ़े नौ बजे आना कठिन है। वे सोच लेते हैं कि अन्य सदस्य तो ठीक समय पर पहुंच ही जायेंगे, इसलिये उनके पहुंचने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसके कारण ठीक समय कार्य प्रारम्भ करना कठिन हो जाता है। मैंने इसलिये यह निश्चय किया है कि कल से हम प्रात: 10 बजे कार्यारम्भ करें और डेढ़ बजे दोपहर को अल्पावकाश हो।

तत्पश्चात् परिषद् शुक्रवार, 3 दिसम्बर सन् 1948 के दस बजे तक स्थगित हुई।